तृतीयावृत्ति १०००
सं० २००६
मूल्य १)

मुद्रक व प्रकाशक —श्रीरामप्रताप शास्त्री,
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

भूमिका

बंगला साहित्य के इतिहास सम्बन्धी ग्रंथों का अभाव नहीं है। किन्तु स्वल्पविस्तार में ही सबके पढने योग्य एवं प्रामाण्य धारावाहिक इतिहास का विशेष अभाव है। इसी कमी को दूर करने के लिए 'बंगला साहित्य की कथा' लिखी गयी है। इस पुस्तक में जहाँ तक संभव हुआ है बारीकियों को छोड़ कर सभी प्रयोजनीय तथ्य और तत्त्व वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है। मल्लिनाथ के शब्दों में—'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते'।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के पोस्ट-ग्रेजुएट विभाग के प्रधान डाक्टर श्रीयुक्त श्यामाप्रसाद मुखोपाध्याय महाशय का उत्साह एवं सेक्रेटरी श्रीयुक्त शैलेन्द्रनाथ का आग्रह यदि न होता तो यह पुस्तक इतनी शीघ्र प्रकाशित न हो पाती। अतएव मैं इनके प्रति आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

श्रीसुकुमार सेन

प्रकाशक का वक्तव्य

हिंदी मे अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य के इतिहास संबंधी ग्रंथो का प्रायः अभाव है, इसी कमी की पूर्ति के लिये बंगला साहित्य के प्रख्यात विद्वान् डा० सुकुमार सेन की "बंगला साहित्येर कथा" नामक पुस्तक का अनुवाद पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। अनुवाद का कार्य बरेली कालेज के सुयोग्य प्रोफेसर श्री भोलानाथ शर्मा ने डा० सेन साहब की देख-रेख मे किया है। अतएव यह अनुवाद प्रामाणिक कहा जा सकता है।

श्री डा० सुकुमार सेन ने इस संबंध मे हमारी जो सहायता की है, उसके लिये हम आभारी हैं, साथ ही श्री उदयनारायण जी तिवारी ने पुस्तक के प्रूफ संशोधन मे जो परिश्रम किया है उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

साहित्य मंत्री

द्वितीय संस्करण का विज्ञापन

द्वितीय सस्करण मे कुछ नवीन तथ्यों का समावेश हुआ है। तर्जा, कविगान और पाँचाली के विषय मे एक नया शीर्षक बढा दिया गया है इसमे कई एक ऐसे नये काव्यो का भी परिचय मिलेगा जो पहले अज्ञात थे आधुनिक काल से पर्व के बगला साहित्य के विषय में जो कोई अधि विस्तृत परिचय अथवा तथ्य जानना चाहें वे मेरा नवप्रकाशित "बगल साहित्येर इतिहास" (बगला साहित्य का इतिहास) अवलोकन कर उपकृ होंगे। वैष्णव गीति-कविगण का परिपूर्ण विवरण मेरे A History of Brajabuli Literature —ब्रजबोली के साहित्य का इतिहास नामक ग्रथ मे मिलेगा।

प्रथम सस्करण का लोकप्रचलित भ्रम वर्तमान सस्करण मे सुधार दिय गया है। श्री रवीन्द्रनाथ ने श्रीयुत सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय को लिखे हु एक पत्र मे इस भ्रम का निर्देश किया है, अतएव इसके लिये उनके प्रति सविशेष कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ। रवीन्द्रनाथ ने लिखा है "इस सबध एक बात कहे देता हूँ। 'बगला साहित्य की कथा' मे एक जगह लिखा कि दिनेन्द्रनाथ ने मेरे रचे हुए बहुत से गानो पर स्वर बैठाया है—य सलकुल निराधार बात है। यही मिथ्या जनश्रुति अबसे पहले भी अन्यत्र छ पे अक्षरो म देखी थी। मौखिकरूप मे भी यह प्राय लोगो मे फैली हुई है

विश्वविद्यालय, कलकत्ता
१० भाद्रपद १३४७ ब०

श्रीसुकुमार सेन

विषय | पृष्ठ

तृतीय परिच्छेद

(सोलहवी शताब्दी)

विषय

१० श्रीचैतन्य जीवनी—मुरारि गुप्त रचित संस्कृत काव्य—परमानन्द सेन कविकर्णपूर रचित संस्कृत काव्य और नाटक—वृन्दावनदास का चैतन्य भागवत—लोचनदास का चैतन्यमंगल—कृष्णदास कविराज का चैतन्य चरितामृत—जयानन्द का चैतन्य मंगल—गोविंददास का कड़्चा—अद्वैत आचार्य की जीवनी, दिव्यसिंह का बाल्यलीलासूत्र, ईशाननागर का अद्वैत-प्रकाश, श्यामदास आचार्य का अद्वैत मंगल, नरहरिदास का अद्वैत विलास—आचार्यपत्नी सीता देवी का जीवनी काव्य—वैष्णव साधना सम्बन्धी विविध ग्रंथ—लोचनदास का दुर्लभसार—कविवल्लभ का रसकदम्ब। .. ..

११ चंडीमंगल तथा विविध काव्य—चंडीमंगल की दो कहानियाँ, कालकेतु की कहानी और धनपति का उपाख्यान—माणिकदत्त का चंडीमंगल-माधवआचार्य का चंडीमंगल—मुकुन्दराम चक्रवर्ती कविकंकण का चंडीमंगल—मुकुन्दराम की आत्मकथा—काव्य का रचनाकाल—वंशीवदन चक्रवर्ती का मनसामंगल—वंशीवदन और उनकी पुत्री चन्द्रावती की कथा—नारायणदेव का मनसामंगल और कालिकापुराण—रामचन्द्रखाँ और "द्विज" रघुनाथ का अश्वमेध पर्व। ..

चतुर्थ परिच्छेद

(सत्रहवीं शताब्दी)

१२ आरंभिक मुगल शासन-उपक्रमणिका : मुगल-शासन का प्रभाव—वैष्णवधर्म का प्रसार—श्रीनिवासाचार्य—नरोत्तमदत्त—श्यामानन्द। ..

विषय

लुब्ध—कविचन्द्र का शिवायन अथवा शिवमंगल—कृष्णरामदास का कालिकामंगल, षष्ठीमंगल और रायमंगल—रायमंगल की कहानी।

१५ बंगाली मुसलमान कवि—नसीर मुहम्मद, सैयद मुर्त्तजा अलीरजा—अराकान की राजसभा में साहित्य चर्चा—दौलत काजी की सती मयनामती अथवा लोरचन्द्रानी—अलाओल की पद्मावती, सैफुलमुल्क, वदिउज्जमाल हफ़्तपैकर और तोहफा सैयदसुलतान का ज्ञानप्रदीप, नबीवंश, शवेमेराज, या ओफातरसूल, या हजरत मुहम्मदचरित—शेखचाँद का रसूलविजय, शाह मुहम्मद सगीर का युसुफ जुलेखा—मुहम्मद खाँ का मक्तुलहुसैन—अब्दुलनबी का अमीर हम्ज़ा।

१६ धर्मठाकुर का छड़ा और धर्ममंगल काव्य—धर्मपूजा का उद्भव—विभिन्न काव्यों में धर्मपूजकों की सृष्टि-तत्वकथा—धर्मपूजा के प्रचलन का स्थान धर्मपूजा की परिणति—धर्मपुराण अथवा धर्मपूजाविधान ग्रंथ—शून्यपुराण—शून्यपुराण का कालनिर्णय—धर्ममंगल काव्य की ऐतिहासिकता का विचार धर्ममंगल कथा—खेलाराम का धर्ममंगल—श्यामपंडित का धर्म मंगल, सीतारामदास का धर्ममंगल—रूपराम का धर्ममंगल—रूपराम की आत्मकहानी—और काव्यरचना का इतिहास—रामदास आदक की आत्मकथा—सीतारामदास की आत्मकहानी—सीतारामदास का दूसरा काव्य मनसामंगल।

पाँचवाँ परिच्छेद

(अठारवीं शताब्दी)

१७ नवाबी शासन—भूमिका—साहित्य में नवीनता—गद्यरचना का सूत्रपात, किरस्तानी पुस्तक—दोम आन्तोनियो का

विषय

ब्राह्मण रोमनकैथोलिक सम्वाद—मानोएल् दा आस्सुम्पसाओं रचित बंगला भाषा का व्याकरण, बंगला पोर्त्तुगीज शब्दकोष और कृपा के शास्त्र का अर्थभेद—साहित्य मे पूर्वकाल की अनुवृत्ति—मुसलमान कवि—हयातमुहम्मद का चित्तउत्थान, मुहर्रमपर्व, हेतुज्ञान और अम्बियावाणी।

१८ पदावली, पदसग्रह ग्रंथ, श्रीकृष्ण मंगल और विविध वैष्णव काव्य—प्रधान पदकर्तागण—विश्वनाथ चक्रवर्ती का क्षणदा गीतचिन्तामणि—नरहरि चक्रवर्ती का गीतचन्द्रोदय—राधामोहन ठाकुर का पदामृतसमुद्र—गौरसुन्दरदास का कीर्त्तनानंद, दीनबंधुदास का संकीर्तनामृत, राधा-मुकुन्ददास का मुकुन्दानन्द—कमलाकान्त का—पदरत्नाकर—निमानन्ददास का पदरससार—"वैष्णवदास"—गोकुलानन्द सेन का पदकल्पतरु—कविचन्द्र चक्रवर्ती का गोविंदमंगल और विविध काव्य—गोपालसिंह का श्रीकृष्णमंगल—बलरामदास का कृष्णलीलामृत—वैष्णव ग्रंथो के अनुवादक कृष्णदास—शची-नन्दन विद्यानिधि की उज्ज्वल चन्द्रिका—पुराणों के अनुवादक द्वारकादास, रघुरामदास, रामलोचन अनन्तरामदास, रामेश्वरनन्दी नन्दकिशोरदास, महाराजा जयनारायण घोषाल—विश्वम्भरदास और "द्विज" मधुकंठ का जगन्नाथमंगल।

१९ वैष्णव जीवनी—"प्रेमदास' पुरुषोत्तममिश्र सिद्धान्त-वागीश की चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी एवं वंशी शिक्षा—नरहरि चक्रवर्ती का भक्तिरत्नाकर नरोत्तमविलास एवं अन्यान्य-ग्रंथ—कृष्णचरणदास और एक दूसरे लेखक का श्यामानन्द प्रकाश—वनमालीदास का जयदेवचरित।

२० रामायण और महाभारत काव्य—विविध रामायण काव्यों के कवि, कविचन्द्र चक्रवर्ती, "हनुमन्तदास" राम-

विषय

, महानन्द चक्रवर्ती, भवानीशंकर वन्द्य "भिक्षु" रामचन्द्र, गाद वन्द्य, "द्विज" भवानीनाथ, "द्विज" सीतासुत, गंगा त्त, कैलासवसु, शिवचन्द्रसेन, फकीरराम कविभूषण, रामानन्द —महाभारत काव्य और महाभागवत की विशेष कथाओं के ।, कविचन्द्र चक्रवर्ती, षष्ठीवर सेन और उनके पुत्र गंगादास योतिष ब्राह्मण' वसुदेव त्रिलोचन चक्रवर्ती, दैवकीनन्दन, कृष्णराम, पीनाथ पाठक, रजीवसेन, गोपीनाथ दत्त, चन्दनदास दास दत्त, रामलोचन, लोकनाथ दत्त, रामनारायण घोष, राजेन्द्र दास।

२१ विविध शाक्त काव्य—मनसामंगल के कवि, रामजीवन विद्याभूषण, "द्विज" रसिक, जीवनकृष्णमैत्र जगज्जीवन घोषाल, षष्ठीवरदत्त, जानकीराम, राजा राजसिंह—रामजीवन का आदित्यचरित्र अथवा सूर्यमंगल—राजा राजसिंह की रागमाला और भारती मंगल—चण्डीमंगल के कवि, कृष्णजीवन, मुक्ताराम सेन, भवानीशंकर दास, जयनारायण सेन, रामानन्द गोस्वामी—दुर्गा-सप्तशती के कवि, शिवचन्द्रसेन—हरिश्चन्द्र वसु रामशंकरदेव, जगद्रामवन्द्य और उनके पुत्र रामप्रसाद, हरिनारायणदास, बलदुर्लभ —दीनदयाल का दुर्गाभक्ति चिन्तामणि—द्विज कालिदास का कालिकाविलास।

२२ धर्ममंगलकाव्य और धर्मपुराण—घनराम और धर्ममंगल—धर्ममंगल के दूसरे कवि, रामचन्द्रवन्द्य, नरसिंह वसु, राम साउ, गोविन्दराम वन्द्य, "द्विज" क्षेत्रनाथ, "द्विज" निधि माणिकराम गांगुली का धर्ममंगल—सहदेव चक्रवर्ती का धर्म

२३ शिवायन, सत्यनारायण की पाँचाली, एवं काव्य—रामेश्वर भट्टाचार्य का शिवायन—रामकृष्णदास

विषय

विषय पृष्ठ

छठा परिच्छेद

(उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध—कम्पनी का शासन)

सातवाँ परिच्छेद

(उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध)

विषय

रामगतिन्यायरत्न—द्वारकानाथ विद्याभूषण—कालीप्रसन्नसिंह —भूदेव मुखोपाध्याय—राजनारायण वसु—कृष्णकमल भट्टाचार्य ।

३१ बंगला काव्य का अभ्युदय—प्राचीनपथ के कवि रघुनन्दन गोस्वामी, मदनमोहन तर्कालंकार—उभयपन्थ के कवि, ईश्वरचन्द्र गुप्त —आधुनिक पथ के कवि, रंगलाल वन्द्योपाध्याय, दीनबंधु मित्र, कृष्णचन्द्र मजूमदार ।

३२ बंगला नाटक का उद्भव और विकास—प्राचीनकाल के नाट्यगीत—झुमुर यात्रा का उद्भव—बंगला नाटक की उत्पत्ति—बंगला नाटकों का प्रथम अभिनय—प्रथमयुग के बंगला नाट्यकार, नीलमणिपाल—हरचन्द्रघोष, कालीप्रसन्नसिंह, नन्दकुमारराय, रामनारायण तर्करत्न—मधुसूदन दत्त—दीनबंधु मित्र—मनोमोहन वसु । ×

३३ कौतुक और व्यंग रचना—"टेकचाँद ठाकुर",—कालीप्रसन्न सिंह ।

३४ मधुसूदन और उनका परवर्ती बंगला काव्य—मधुसूदन की साहित्य साधना की कहानी—मधुसूदन का काव्य—विहारीलाल चक्रवर्ती—सुरेन्द्रनाथ मजुमदार—हेमचन्द्रवन्द्योपाध्याय —नवीनचन्द्र सेन ।

३५ बंकिमचन्द्र और उनका युग—बंकिमचन्द्र के साहित्य-जीवन की कहानी—बंकिमचन्द्र का कृतित्व—राजकृष्ण मुखोपाध्याय —अक्षयचन्द्र सरकार—संजीवचन्द्र चट्टोपाध्याय—रमेशचन्द्रदत्त—तारकनाथ गंगापाध्याय— इन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय योगेन्द्रचन्द्र वसु—कालीप्रसन्न घोष—हरप्रसाद शास्त्री—रजनीकान्त गुप्त—ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर—जोड़ासाँको का ठाकुरभवन ।

विषय पृष्ठ

प्रथम परिच्छेद

दसवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक

(१)

बंगला साहित्य का आदि युग

बगाल देश में आर्यों के आने से पहले जो लोग रहते थे उनकी सभ्यता आरभ मे उच्चकोटि की न थी एवं साहित्य के नाम से जिस वस्तु का बोध होता है वह उनके पास कुछ भी नहीं थी। ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी में मौर्य सम्राटों के समय से इस देश मे आर्यों का बसना आरभ हुआ, तथा खीष्टीय पचम शताब्दी के मध्य मे ही बंगाल देश में वह लोग सब जगह बस गये। आर्य लोग उत्तरपश्चिम दिशा से आये थे। इनकी पोशाकी भाषा, अर्थात् शिक्षा, विद्याचर्चा और सामाजिक व्यापार की भाषा थी सस्कृत, और अठपहरिया अर्थात् घरेलू भाषा थी सस्कृत से उत्पन्न प्राकृत।

इस देश मे साहित्यचर्चा की नींव इन्हीं उपनिविष्ट आर्यों द्वारा रखी गई। पहले कई शताब्दियों तक तो वह जो कुछ भी लिखते थे सस्कृत मे ही लिखते थे, दैवात् ही कभी प्राकृत मे उन्होंने लिखा हो। इन सब लेखों का नमूना ताम्रपत्रों पर लिखित अनुशासनों, या भूमिदानपत्रों एव एक दो महाकाव्यों और कतिपय श्लोकों में मिलता है। बगाल देश में रचित सबसे प्राचीन काव्य है रामचरित। यह रामायण की कथा के आधार पर लिखा गया है। काव्य रचयिता का नाम अभिनन्द है। अनुमान किया जाता है कि यह सम्राट् देवपाल के अनुचर थे। यदि ऐसा हो तो मानना पडेगा कि यह खीष्टीय आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वर्त्तमान थे। पाल सम्राटों के राजत्व

काल मे, दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग मे, और भी एक काव्य रचा गया था। इस काव्य का भी नाम रामचरित ही है। इसमें द्वयर्थकता के सहारे रामकथा एव सम्राट् रामपाल देव की जीवनी एक साथ वर्णित हुई हैं। इसके रचयिता कवि सध्याकर नन्दी रामपाल देव के पुत्र मदनपालदेव के अनुचर थे।

पाल राजा विद्योत्साही थे। उनके उपरान्त वर्म और सेन वशो का राज्यकाल आता है। यह और भी अधिक विद्योत्साही और साहित्यामोदी थे। उस समय के प्राय. सभी बडे पडित और कवि सेन राजाओं की सभा को अलकृत कर गये हैं। बारहवी शताब्दी के अन्तिम भाग मे लक्ष्मणसेन देव की सभा मे उमापति धर, शरण, धोयी, गोवर्धनाचार्य एव जयदेव इन पाच विख्यात कवियो का सम्मेलन हुआ था।

उस युग के श्रेष्ठ कवि थे जयदेव। इनका गीतगोविन्द काव्य श्रीकृष्ण की वृन्दावन लीला के विषय पर रचा गया है। इसमे चौबीस गान अथवा पद हैं। सस्कृत मे रचित होने पर भी इनकी श्रुतिमधुरता शिक्षित एव अशिक्षित सभी का मन हरने वाली है। वास्तव में इन्हीं पदो से बगला साहित्य का सूत्रपात होता है। परवर्ती समय के प्राय. सभी वैष्णव कवि थोडे बहुत जयदेव के ऋणी हैं। जयदेव का निवासस्थान अजय नदी के तट पर केन्दुबिल्व ग्राम मे था। यही गॉव आजकल केंदुली अथवा जयदेव केंदुली नाम से विख्यात है। जयदेव की स्मृतिपूजा के उपलक्ष मे इस स्थान पर अत्यन्त प्राचीन काल से प्रतिवर्ष पौष सक्रान्ति को विराट् मेला लगता है। बगाल देश के दूरतम छोरों से साधु वैष्णव आकर इस मेले मे योग देते रहे हैं। जयदेव और उनकी पत्नी पद्मावती के सबध मे अनेक गल्पकथाएँ प्रचलित हैं। जान पडता है कि पुरी मे उन्होने कुछ समय तक जगन्नाथदेव के सेवक अथवा भक्त के रूप मे निवास किया था। सम्भवत जयदेव के समय से ही जगन्नाथदेव के निकट गीतगोविन्द के पद गाये जाते रहे हैं।

सस्कृत भाषा लोगों के मुखों में रहते रहते कालक्रम मे रूपान्तरित होकर कृत भाषा मे बदल गई। फिर इसी प्राकृत भाषा के भग होने पर विभिन्न धुनिक भाषाएँ—जैसे बगला, आसामी, उड़िया, मैथिल, हिन्दी, उर्दू, गराती, मराठी, इत्यादि—उत्पन्न हुई। आधुनिक भाषाओं मे बदलने से ठीक ले जो प्राकृत का रूप था उसको अपभ्रश कहा जाता है। सेन राजाओं समय मे अपभ्रश भाषा की भी कुछ कुछ चर्चा होती थी, पर वह अवश्य राजसभा अथवा विद्वद्गोष्ठी में नहीं, बल्कि साधारण जनता, और शेष कर बौद्धधर्मावलम्बी सिद्धाचार्यों एव साधकों मे होती थी। यही बौद्ध द्धाचार्य बगला मे भी पद लिखते थे। जहाँ तक पता चला है, इनसे ले बगला भाषा मे और किसी ने कुछ रचना नहीं की है। ऐसा हो भी हीं सकता था। क्योंकि इसी समय में तो—ईसा की दसवीं और ग्यारहवीं ताब्दी मे ही—बगला भाषा ने अपभ्रश से पृथक् होकर स्वतन्त्र भाषा रूप मे मूर्ति प्राप्त की थी।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय ने नैपाल दरबार के पुस्तकालय खोज कर बौद्ध सिद्धाचार्यों के लिखे गीतों की एक पोथी का अन्वेषण किया और १३२३ (बगाब्द) मे अन्य कई पोथियों के साथ वंगीय साहित्य रिषद् की सहायता से "हजार बछरेर पुराण बंगला भाषाय बौद्धगान दोहा" (हजार वर्ष पुरानी बंगला भाषा मे बौद्धगान और दोहे) नाम उसका प्रकाशन किया था। मूल पुस्तक में इक्यानवे पद थे। उनमे से पद तो पोथी लिखने वाले ने छोड़ दिया था, और पोथी के कई पत्र भी गये थे। फलत मोटे हिसाब से साढे छियालिस पद हम लोगों के हाथ है। पदों मे पदकर्ता का नाम भी भणिता के रूप में दिया गया है। पदों जिस स्वर मे गाना चाहिये उसका भी निर्देश किया गया है। इसके तिरिक्त पोथी मे गीतों की एक विस्तृत संस्कृत टीका भी है।

गीतों मे बौद्ध सिद्धाचार्यों का सकेत निहित है। वह सकेत आजकल लोगों के लिये प्रायः अबोध्य है। तथापि गीतों का जो बाह्यार्थ है उसको

ा विशेष कठिन नहीं है। भाषा सचमुच ही कठिन है, क्योंकि बगल
उसी समय प्राकृत की केंचुली छोड़ कर बाहर हुई थी।

जयदेव के काव्य तथा बौद्धगीतों में जो गीतिकाव्य अथवा पदाव
ारा शुरू हुई वही धारा परवर्ती वैष्णव कवियों के काव्य में पूर्ण
शक्ति को सचित करके बगला साहित्य की प्रधान धारा के रूप
ात हो गई। आधुनिक साहित्य के मध्य में भी गीतिकाव्य के रूप
धारा निरवच्छिन्न प्रवाह में अक्षुण्ण गति से चली जा रही हैं। बग
ा के जन्म मुहूर्त में ही उसके साहित्य ने जो अपनी मूल धारा, मूलस्व
ात् गीति काव्य को खोज पाया, यह परम सौभाग्य का विषय है। य
न होता तो जान पडता है कि आज बगला साहित्य का ससार
म श्रेणी के साहित्यों के मध्य में स्थान पा सकना सदिग्ध हो जाता।

(२)

तुर्की आक्रमण के पश्चात्

बारहवीं और तेरहवी शताब्दियों के सन्धिकाल में बगाल देश प
ों का आक्रमण शुरू हुआ। बगाल बहुत दिनों से आर्यावर्त के राष्ट्र
र्य से बाहर रह कर अपने स्वतन्त्र पथ पर चला आ रहा था। इस
रण आर्यावर्त्त में जब शक, हूण प्रभृति आक्रमणकारियों ने प्रचड विक्षो
न्थित कर रखा था, उस समय उसकी लहर बगाल की सीमा पर पहुँ
र बगालियो के ग्रामजीवन की सुख शान्ति में विन्दुमात्र व्याघात त
स्थित न कर सकी। बहुत समय के पश्चात् जब तुर्की और पठान से
श्चिम और उत्तर भारत मे देश पर देश ग्रास करके पूर्व दिशा की ओ
ग्रसर हो रही थी, तो भी इसकी गुरुता बगालियों की समझ में न आई
तएव जब मुहम्मद-बिन्-बख्तियार मगधदेश को जीत और लूट क
कस्मात् पूर्व दिशा की ओर चढ दौडा तो उस समय बगाल में राजशा

अथवा प्रजावर्ग कोई भी इन विदेशी आक्रमणकारियो को उपयुक्त बाधा देने के लिए किञ्चित्मात्र भी प्रस्तुत न था। सुतरा मुट्ठी भर तुर्की पठान सेना को बगाल में किसी विशेष युद्ध अथवा अन्य प्रकार की बाधा का सामना नहीं करना पड़ा।

तुर्की आक्रमण के फलस्वरूप बगालियों की विद्या और साहित्यचर्चा की जड़ पर कुठाराघात हुआ। लगभग ढाई सौ वर्ष के लिए देश सब दिशाओ मे पिछड़ गया। देश में शान्ति नहीं थी, सुतरा साहित्यचर्चा तो हो ही नहीं सकती थी। प्रधानतः इसी कारण से तेरहवी और चौदहवी इन दो शताब्दियों मे रचित कोई बंगला काव्य नहीं पाया जाता।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य भाग में शम्सुद्दीन इलियास शाह ने दिल्ली के सम्राट की आधीनता के पाश को काट कर बगाल मे स्वाधीन सुलतान राज्य स्थापित किया। तभी से देश में शान्ति स्थापित होने के अनुकूल अवस्था की सृष्टि हुई। फिर से देश में ज्ञानचर्चा शुरू हुई एव साथ ही साथ साहित्य रचना की चेष्टा भी दिखलाई पड़ी। पाल एवं सेन वंशो के नरपतियो के समान इस बार भी मुख्यतया राजशक्ति ही साहित्यचर्चा की पृष्ठपोषकता करने लगी।

पन्द्रहवीं शताब्दी मे कम से कम तीन सुलतानो ने और सोलहवी शताब्दी मे कम से कम एक सुलतान एवं दो उच्चपदस्थ मुसलमान राजकर्मचारियों ने अपने सभाकवियो से अनेकों उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ प्रस्तुत कराई थीं—इसका प्रमाण मिला है। इस विषय की विवेचना आगे की जाएगी। तुर्की आक्रमण के पश्चात्, पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर अंग्रेजी अधिकार के पूर्वकाल अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग तक बंगला साहित्य प्रधानतः गीतिमूलक था। अर्थात् बंगला साहित्य साधारणतया पढ़ा और दुहराया नहीं जाता था—मँजीरे, मृदंग और चामर के साथ अकेले अथवा दलबद्ध रूप मे गाया जाता था। मालूम पड़ता है कि अत्यन्त प्राचीन काल मे इस शैली के काव्य के पंचालिका अथवा कठपुतली के नाच के साथ गाये जाने के कारण ही बाद को बंगला काव्य का साधारण नाम 'पाँचाली' हो गया।

साथ ही साथ काव्यों मे किसी न किसी देवता अथवा देवतुल्य मनुष्य व
महिमा कीर्तित होती थी, इसीलिये काव्यों के नाम प्राय 'मगल' अथ
'विजय' शब्द से युक्त होते थे। देवमाहात्म्य सबन्धी गीति के अर्थ मे 'मगल
शब्द का प्रथम व्यवहार जयदेव ने किया था।

अनेकों यह धारणा बनाये बैठे हैं कि प्राचीन बगला साहित्य मे 'मगल
और 'विजय' नाम वाले काव्यो की दो स्वतन्त्र धाराएँ वर्तमान थी। य
धारणा बिलकुल भूल है। एक ही काव्य की विभिन्न पोथियों मे कभी 'मंगल
और कभी 'विजय' नाम मिलता है। जैसे मालाधर वसु का काव
श्रीकृष्णविजय, श्रीकृष्णमगल एव गोविन्द मगल, इन तीन नामों से समा
भाव से सुपरिचित था।

पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम भाग में पश्चिम वग मे जनसाधारण
साहित्यिक रुचि का सर्वोत्तम चित्र वृन्दावनदास के चैतन्यभागवत ग्रथ
मिलता है। वृन्दावनदास ने लिखा है कि उस समय गायक लोग कृ
की बाललीला एव शिव की गृहस्थी के गीत गाकर भिक्षा माँगते थे, पू
के उपलक्ष मे आग्रहपूर्वक मगलचडी और विषहरी अथवा मनसा
पाँचाली सुना करते थे, एव रामायणगान और ऐतिहासिक गाथाओ
साधारण लोगो, यहाँ तक कि विदेशी मुसलमानो तक का चित्त द्रवित
जाता था। पन्द्रहवी शताब्दी मे रचित इन सब काव्यो मे से केवल दो ए
मिले हैं। किन्तु ऐतिहासिक गाथाएँ—वृन्दावनदास के शब्दों मे "योगीपाल
भोगीपाल महीपालेर गीत"—तो बिलकुल ही लुप्त हो गई सी प्रतीत होती हैं

द्वितीय परिच्छेद

पन्द्रहवीं शताब्दी

(१)

कृत्तिवास ओझा और मालाधर वसु

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ की ओर ही हम एक महाकवि को पाते हैं वह कृत्तिवास ओझा हैं। कृत्तिवास की रामायण बंगला साहित्य का एक प्रधान काव्य है। रचना के पश्चात् से ही वह काव्य जैसा अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त करता चला आ रहा है वैसा आदर एक काशीरामदास के महाभारत काव्य को छोड़ कर किसी तीसरे बंगला काव्य को प्राप्त नहीं हुआ। कृत्तिवास की रामायण केवल काव्य रस जुटा कर बंगालियों के श्रवण और मन को तृप्त करके ही विरत नहीं हुई; किन्तु इस अनवद्य काव्य से बंगाल के तमाम नर नारी इन छः सौ वर्षों से नैतिक शिक्षा और आध्यात्मिक परितृप्ति पाते आ रहे हैं। ऐसा कठोरहृदय व्यक्ति कोई नहीं होगा जिसका चित्त रामायण की शान्तकरुण कहानी सुनकर तत्क्षण ही आर्द्र न हो जाता हो। ऐसा काव्य आहार और औषध दोनों ही होता है; एक ओर तो वह जनसाधारण का चित्त प्रसन्न करता है, दूसरी ओर साथ ही साथ अज्ञात भाव से श्रोता और पाठक के चरित्र गठन में सहायता किया करता है। कृत्तिवास की रामायण बंगालियों का जातीय काव्य है। उस समय केवल हिन्दुओं ने ही नहीं बल्कि मुसलमानों से भी इस काव्य ने विशेष रूप से आदर पाया था, इस बात का उल्लेख वृन्दावनदास ने अनेक बार किया है।

कृत्तिवास ने अपने काव्य में जो आत्मविवरण दिया है उससे जो कुछ पता चलता है वह संक्षेप में इस प्रकार है। कृत्तिवास के एक पूर्वपुरुष नरसिंह

ओझा पूर्ववग से आकर गगातट पर फुलिया नामक गाँव में बस गये थे। इनका एक पौत्र मुरारी ओझा था। मुरारी के सात पुत्र थे जिनमे एक का नाम था वनमाली। यही वनमाली कृत्तिवास के पिता थे। कृत्तिवास की माता का नाम मालिनी था। उनके छ• भाई थे और एक सौतेली बहिन थी। कृत्तिवास का जन्म माघ मास की श्रीपचमी को रविवार के दिन हुआ था। बारह वर्ष की अवस्था मे वह पद्मा के पार उत्तर देश में पढने के लिए गये। वहाँ से नानाशास्त्रों का अध्ययन करके वह बगाल की राजधानी गौड को चले गये। उस समय राजसम्मान पाये बिना कोई कितना ही बडा पडित क्यों न हो उचित आदर नहीं पाता था। सुतरा कृत्तिवास ने राजभवन में पहुँचकर पाँच श्लोक रचकर द्वारपाल के हाथ राजा के पास भेजे। उस समय माघ मास था, गौडेश्वर पात्रमित्रो के साथ प्रासाद के भीतर आँगन में धूप ताप रहे थे। राजा श्लोक पढ कर चमत्कृत हुए और उन्होने कृत्तिवास को अपने निकट बुला लिया। राजा के समीप आकर कृत्तिवास ने तत्काल ही सात श्लोकों की रचना करके राजा का अभिवादन किया और आशीर्वाद दिया। उनके पांडित्य एव कवित्व से मुग्ध होकर गौडेश्वर ने उनकी यथाविधि सवर्द्धना की। सभासदो ने कृत्तिवास से राजा के पास से कोई भारी पुरस्कार माँगने का अनुरोध किया। पर कृत्तिवास ठहरे ब्राह्मण पडित, भला वे यो सहज में ही दान क्यो लेने लगे ? उन्होंने सगर्व उत्तर दिया कि वह किसी का दान नहीं लेते, केवल गौरवमात्र ग्रहण करके सन्तुष्ट रहते हैं। कृत्तिवास की लोभहीनत से और भी अधिक सन्तुष्ट होकर राजा ने उनसे बगला भाषा में रामायण काव्य की रचना करने का अनुरोध किया। गौडेश्वर का आदेश पाक कृत्तिवास ने सात काट रामायण पाँचाली की रचना की।

कृत्तिवास ने गौडेश्वर का नामोल्लेख नहीं किया है, किन्तु राजसभा क जो वर्णन उन्होंने किया है उससे तथा सभासदो के नामों से यह पता चलत है कि गौड के सिहासन पर उस समय कोई हिन्दू राजा आसीन थे। पचदः शताब्दी मे कस अथवा गणेश को छोड कर अन्य कोई हिन्दू राजा गौडेश्व

नहीं हुआ। सुतरा कृत्तिवास ने राजा गणेश के द्वारा आदिष्ट होकर रामायण काव्य की रचना की, यह अनुमान बिल्कुल असगत नहीं है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ की ओर कृत्तिवास ने अपने काव्य की रचना की थी, अतएव इस काव्य की भाषा पुरानी तो होनी ही चाहिये। किन्तु काव्य के अत्यन्त जनप्रिय होने के कारण लोगों के मुख मे इसकी भाषा बदलते बदलते बिल्कुल आधुनिक हो गई है। अन्यान्य दोष भी थोड़े बहुत न आ घुसे हों, ऐसी बात नहीं है।

राजा कस अथवा गणेश के पुत्र यदु ने किसी विशेष कारण से मुसलमान धर्म ग्रहण करके जलालुद्दीन मुहम्मद शाह नाम धारण कर लिया। गौड के सिहासन पर आरूढ होकर वह भी हिन्दू कवि और पडितों की पृष्ठपोषकता से पराङ्मुख नहीं हुए। यदु के द्वारा अनुगृहीत पडितो मे सबसे अधिक विख्यात थे बृहस्पति महिन्ता। इन्होंने कहा है कि "गौड़ावनीवासव" (गौड भूमि के इन्द्र) जलालुद्दीन से इनको एक एक करके क्रमशः ये सात उपाधियाँ मिलीं—आचार्य, कविचक्रवर्ती, पडित सार्वभौम, कवि पडित चूड़ामणि, महाचार्य, राजपडित, रायमुकुटमणि। अन्तिम उपाधि देने के समय राजा ने खूब धूमधाम की थी, और उनको हाथी, घोड़े, छत्र और बहुत से रत्नालकार दिये थे।

जलालुद्दीन के पश्चात् कुछ समय तक गौड के सुलतानो की विद्योत्साहिता का कोई बड़ा परिचय नहीं मिलता। उस युग मे राजकार्य प्रधानत. उच्चपदस्थ हिन्दू कर्मचारियों के ही हाथ मे न्यस्त था। राजा और सुलतानो के समान ही दरबार के उच्चपदस्थ कर्मचारी भी साहित्य और शास्त्रचर्चा की पोषकता किया करते थे। यह लोग कवि पडितों के उत्साहदाता तो थे ही, इनके अतिरिक्त स्वय भी सुयोग और योग्यतानुसार काव्यरचना करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग की समाप्ति की ओर एक राजकर्मचारी कवि ने गौडेश्वर से सवर्द्धना प्राप्त की। यह वर्द्धमान जिले के कुलीन ग्राम के निवासी मालाधर वसु थे। इन्होंने सुलतान रुकनुद्दीन बार्बक शाह से "गुणराज खान" की उपाधि पाई थी। रुकनुद्दीन बार्बक शाह का राज्यकाल १४६० से १४७५

ई० तक रहा। १३६५ शकाब्द अर्थात् १४७३ अथवा १४७४ ई० में मालाधर ने एक कृष्णलीला काव्य की रचना आरम्भ की। सात वर्ष के दीर्घकाल के उपरान्त १४०२ शकाब्द अर्थात् १४८० अथवा १४८१ ई० में यह श्रीकृष्णविजय नामक काव्य समाप्त हुआ। जहाँ तक पता चला है, श्रीकृष्णविजय कृष्णलीला विषयक प्रथम बगला काव्य है और समस्त बगला साहित्य में सन् और तारीख से युक्त प्रथम ग्रथ है।

श्रीकृष्णविजय अत्यन्त सुललित काव्य है। कवि के भक्तहृदय का परिचय काव्य मे उज्ज्वल भाव से प्रस्फुटित हो उठा है। कवि के पुत्र सत्यराज खान जब पुरी मे श्रीचैतन्यदेव से प्रथम बार मिले थे तो श्रीचैतन्य ने उनके पिता द्वारा रचित काव्य की विशेष प्रशसा की थी।

रुकनुद्दीन के पश्चात् शम्सुद्दीन यूसुफशाह गौड के सुलतान हुए। इनका राज्यकाल १४७८ से १४८१ तक है। यूसुफशाह के पश्चात् बारह वर्ष तक गौड सिंहासन पर शीघ्रतापूर्वक राजपरिवर्तन होता रहा। फलत देश की शान्ति में भी विघ्न बना रहा। अन्त मे १४९३ में सैयद हुसैन नामक एक निम्नपदस्थ कर्मचारी ने अपनी असाधारण योग्यता के बल से क्षमतापन्न होकर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सुलतान होकर इन्होंने "सैयद अलाउद्दीन हुसैन मुजफ्फरशाह शरीफेमक्की" नाम ग्रहण किया। सुलतानों में हुसैनशाह सब से अधिक विख्यात हुए हैं। इनके राज्यकाल (१४९३ से १५१८ ई०) मे श्रीचैतन्यदेव के अलौकिक चरित्र ने बगाल एव भारतवर्ष मे स्थान स्थान पर अभूतपूर्व जागरण पैदा कर दिया। यह कथा आगे कही जाएगी।

(२)

पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त, सोलहवीं शताब्दी का आरंभ—हुसैनशाही शासन

हुसैनशाह के राज्यलाभ के पश्चात् देश मे फिर से शान्ति स्थापित हुई एव विद्या और साहित्यचर्चा मे उत्साह का सचार हुआ। गौड दरबार के

निेक उच्च कर्मचारी शास्त्रचर्चा और काव्यालोचना किया करते थे। ट
मय के दो श्रेष्ठ बगाली मनीषी सुलतान के मंत्री थे। यही दोनों भाई ब
ो ससार छोड़ कर श्रीचैतन्यदेव का अनुग्रह लाभ करके सनातन और
ोस्वामी के नाम से विख्यात हुए। रूप गोस्वामी बड़े भारी कवि थे। इन
र्चा आगे श्रीचैतन्यदेव के प्रसग में की जाएगी। सनातन और रूप ि
मय गौड़ दरबार में काम करते थे उस समय उनका निवासस्थान गौड़
ास रामकेली ग्राम में था। इसी रामकेली के निवासी चतुर्भुज नामक व
। हरिचरित नाम के एक कृष्णलीला विषयक सस्कृत महाकाव्य की रच
ी थी। यह १४१५ शकाब्द अर्थात् १४९४ ई० की बात है। हुसैनशाह
क दूसरे कर्मचारी श्रीखड निवासी वैद्य यशोराज खान ने एक कृष्णली
वेषयक बगला काव्य की रचना की थी। इस काव्य के एक पद की भणि
ं कवि ने सगौरव हुसैनशाह का नामोल्लेख किया है।

जिस कारण से भी हो, सिंहासनारोहण के साथ ही साथ हुसैनशाह
यश और विक्रम देश में सर्वत्र फैल गया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्ति
दशक में रचित दो मनसामगल काव्यों में ही प्रशसा सहित हुसैनशाह
उल्लेख हुआ है। दोनों काव्यों का परिचय देने से पहले मनसामगल कह
का कुछ परिचय दिया जाता है।

बगाल देश में सर्पदेवता मनसा की पूजा बहुत दिनों से चली आ
है। तथापि मनसापूजा का समादर निम्नश्रेणी के ही लोगों में अधिक थ
उस युग में उच्चश्रेणी के लोग मनसादेवी को विशेष महत्त्व देते हों ऐसा
जान पड़ता। मनसा की पूजा के समय मनसादेवी के माहात्म्य को प्र
करने वाली पाँचाली गाई जाती थी। इस पाँचाली की कहानी किसी पु
में नहीं है, यह बंगाल की निजी कथा है। सक्षेप में कथा इस प्रकार

शिव की कन्या मनसा असमय में जन्म लेने के कुछ ही क्षणों के भ
देहवृद्धि लाभ करके पूर्णवयस्का नारी हो गई और उन्होंने सर्पों का आधि
पा लिया। शिव के उनको घर लाने पर शिवगृहिणी चडी को ईर्ष्या हु

फलत मनसा और चडी के बीच दारुण विवाद छिड़ गया और हाथापाई के परिणाम स्वरूप मनसा की एक आँख जाती रही। चडी के ऊपर भयङ्कर क्रोध करके मनसा ने पितृगृह का परित्याग कर दिया। कुछ समय के पश्चात् जरत्कारु मुनि के साथ मनसा का विवाह हो गया। जरत्कारु से मनसा के गर्भ द्वारा आस्तीक का जन्म हुआ।

जन्मेजय के पिता सम्राट् परीक्षित ने साँप के काटने से देहत्याग किया था। पिता की हत्या का बदला लेने के लिए जन्मेजय ने सर्पयज्ञ का अनुष्ठान किया क्योंकि इस यज्ञ के पूर्ण होने पर जगत् के सारे सर्प नष्ट हो जाते। सर्पों ने विपत्ति को जान कर मनसा की शरण ली। मनसा ने आस्तीक को जन्मेजय के यज्ञस्थल को भेज दिया। आस्तीक ने समझा बुझा कर जन्मेजय को यज्ञ से निवृत्त कर दिया। कितने ही साँपों की रक्षा हो गई। यहाँ तक तो यह पुराणों की कथा है।

इधर चडी द्वारा मनसा का जो अपमान हुआ था वह उसको भूल नहीं सकी थी। उपयुक्त बदला लेने का एकमात्र उपाय था शिव और चडी के भक्तों से पूजा प्राप्त करना। इससे पहले लोकसमाज में मनसा की पूजा का प्रचार कराना आवश्यक था। मनसा ने पहले इसी कार्य मे समय लगाया इसमे उनकी परम सहायक उसकी सहचरी नेत्रवती अथवा नेता बनी थोडे ही परिश्रम द्वारा मनसा क्रमश , ग्वालों, मछेरों और दरिद्र मुसलमानों पूजा प्राप्त करने मे समर्थ हो गई। तब उनके मन में आया कि समाज उच्च स्तर मे भी उनकी पूजा प्रचलित होनी चाहिये। उस समय गधियों समाज मे विशेष प्रतिपत्ति- शाली व्यक्ति थे। इस समाज का शीर्षस्थानीय थ चन्द्रधर अथवा चाँद वणिक्। नेता ने छद्मवेश में आकर चाँद की पत सनका को मनसा की पूजा सिखा दी। एक दिन स्त्री को मनसा की पूज करते देख कर चाँद क्रुद्ध हुआ और उसने पूजा की सामग्री को लात मारक फेंक दिया। चाँद को किसी प्रकार काबू मे न आते देखकर मनसा ने उसे दड देकर वश मे करने का सकल्प किया। उसके छ पुत्र मूल्यवा

द्वितीय परिच्छेद

पण्यद्रव्य लेकर वाणिज्य से लौट रहे थे। मनसा के कोप से वे छहों पण्यद्रव्य समेत समुद्र में डूब गये। चाँद उतने पर भी दबने वाला नहीं थ उसके पास "महाज्ञान" था। उसके बल से उसने अपने छहों पुत्रों को ब लिया। तब मनसा ने तीन प्रकार के छल से उसका महाज्ञान हरण लिया। तब फिर चाँद अपने छः पुत्रों और धनसम्पत्ति को रक्षा नहीं सका। धनहीन चाँद कौपीन- मात्र पहने वाणिज्य से लौट कर आया। समय चाँद का सबसे छोटा पुत्र लक्ष्मीन्धर, अथवा लक्ष्मीन्द्र ("लखिन्दर बड़ा हो चुका था। खूब धूमधाम से विपुला अथवा बेहुला के लक्ष्मीन्धर का विवाह हुआ। चाँद वणिक् के पूरी पूरी सतर्कता बरतने भी लौहनिर्मित छिद्रशून्य कौतुकगृह में लक्ष्मीन्धर साँप के काटने से गया। अब तो चाँद वणिक् का सचमुच ही सर्वनाश हो गया।

विपुला अवस्था मे बालिका होने पर भी, बुद्धि, धैर्य एव सतीत्व के में प्राप्तवयस्का रमणियों की अपेक्षा अधिक तेजस्विनी थी। उसने म मन सकल्प किया कि चाहे प्राण चले जाएँ पर स्वामी को अवश्य ब होगा। साँप के काटे हुए मृत व्यक्ति को जलाया नहीं जाता, साधार देह को जल में बहा दिया जाता है। विपुला एक छोटे से बेडे पर स्वामि मृत देह लेकर बैठ गई और वक्र नदी की धारा में बेड़ा बहा दिया ग किसी भी अपने परिजन के समझाने और मना करने को उसने नहीं सु शाखा नदी की धारा में बहता हुआ बेड़ा गगा की ओर चला मार्ग में अ प्रलोभनों और भयों ने विपुला को विचलित करने की चेष्टा की, किन्तु वि का मन अचल, अटल बना रहा।

त्रिवेणी के निकट गगासगम मे पहुँच कर विपुला ने एक अलौ घटना देखी। एक धोबिन अपने बच्चे को लेकर कपड़े धोने आई। पहले अपने लडके को पटक कर मार डाला और तदुपरान्त कपडे आरम्भ किया। फिर सन्ध्या के समय लौटने के पूर्व उसने लड़के को जीवित कर लिया। यह दृश्य देख कर विपुला ने विचारा कि यह

साधारण छोकरी नहीं है, इसकी सहायता से ही शायद उसके पति का पुनर्जीवन हो जाए। दूसरे दिन धोबिन के आने पर विपुला ने विनीत भाव से उससे वार्तालाप करके उसके लिए कुछ कपडे धो दिये। परिचय से उसने जाना कि यह धोबिन स्वर्ग के देवताओं के कपड़े धोती है और इसका ही नाम नेत्रवती अथवा नेता है, यही मनसा की सहचरी भी है। नेता विपुला से प्रसन्न होकर उसकी सहायता करने को राजी हो गई। विपुला नेता के साथ स्वर्ग को गई और वहाँ सगीत और नृत्यकला की दक्षता दिखला कर उसने देवताओं को परम परितुष्ट कर लिया। देवताओ ने विपुला के दुख की कहानी सुनी। पर उनके हाथ की तो बात थी नहीं। अन्त मे उनके हठपूर्वक अनुरोध एव विपुला की कातरोक्ति से मनसा का क्रोध शान्त हुआ। विपुला ने मनसा से प्रतिज्ञा की कि चाहे जैसे भी होगा वह अपने श्वसुर से उसकी पूजा करायेगी। मनसा ने लक्ष्मीन्धर की अस्थिमात्र देह मे प्राण सचार कर दिया और दूसरी ओर पण्यसामग्री सहित चाँद के बडे छ पुत्रों को भी बचा दिया। आनन्दोच्छ्वास के मध्य मे मृत्यु के गाल से लौटे हुए लक्ष्मीन्धर और नारीरत्न विपुला का परिजनो से मिलन हुआ। बस अब चाँद वणिक् को मनसा की पूजा करने मे कोई आपत्ति नहीं रही।

मनसा के गीत के पहले से ही प्रचलित रहने पर भी, जो सबसे पुराना मनसामगल प्राप्त हुआ है उसकी रचना सम्भवत १४९५ ई० मे आरम्भ हुई थी। सन् और तारीख के साथ कवि ने हुसैनशाह का भी नामोल्लेख किया है। कवि का नाम विजयगुप्त है। बारीसाल जिले के फुल्लश्री (आजकल गैला) नामक गाँव मे एक वैद्यवश मे कवि का जन्म हुआ था। उसके पिता का नाम था सनातन और माता का नाम था रुक्मिणी। १४१६ शकाब्द के श्रावण मास मे रविवार को मनसापचमी (नागपचमी) के दिन कवि ने स्वप्न देखा कि देवी मनसा उसको मनसामगल पाँचाली की रचना करने का आदेश कर रही है। तदनुसार काव्य की रचना हुई। विजयगुप्त ने अपने पूर्ववर्ती मनसामगल के रचियता कवि 'काणा' हरिदत्त का नामोल्लेख किया है। एक पद को छोडकर अब हरिदत्त के काव्य का चिह्न तक लुप्त हो गया है।

विजयगुप्त की रचना के एक वर्ष पीछे ही अर्थात् १४१७ शकाब्द अथवा ६ ई० में ब्राह्मण कवि विप्रदास पिपिलाई ने एक मनसामंगल काव्य की । आरम्भ की। इन्होंने भी हुसेनशाह का नामोल्लेख किया है—"नृपति शाहा गौडेर प्रधान" (नृपति हुसेन शाह गौड के प्रधान हैं)। ास का निवासस्थान चौबीस परगना जिले के बशीरहाट महकमे के र्गत नादुड्यावट गाँव मे था। कवि के पिता का नाम था मुकुन्द पंडित। के तीन चार भाई थे। विप्रदास ने भी स्वप्न मे मनसा द्वारा आदेश ः पाँचाली की रचना की थी।

काव्य की दृष्टि से विजयगुप्त एवं विप्रदास की रचनाएँ उच्चश्रेणी की नही तो भी विप्रदास के काव्य में ऐतिहासिकों के लिए अनेक मूल्यवान तथ्य त हैं। विजयगुप्त का काव्य पूरा नहीं मिलता, जो कुछ मिला है उसमें बहुत कुछ मिलावट हो गई है। यहाँ तक कि काव्य का रचना काल भी ह से परे नहीं है।

हुसैनशाह के एक कर्मचारी यशोराज खान ने एक कृष्णमंगल काव्य की ा की थी यह पहले कहा जा चुका है। इन्होंने भी अपने काव्य में तान के नाम का स्मरण किया है।

हुसैनशाह एक सेनापति (लश्कर) ने चटगाँव को जीत कर इस प्रान्त जागीर के रूप मे पाया और वह वहीं शासनकर्ता के रूप मे बस गया। का नाम परागल खान था। इन्होंने अपने सभासद कवीन्द्र के द्वारा भारत ाली अर्थात् महाभारत काव्य की रचना कराई थी। काव्य का नाम वविजय अथवा विजयपाटव कथा है। लश्कर परागल खान महाभारत कथा मे इतने अधिक अनुरक्त थे कि कवीन्द्र के काव्य का पाठ उनको ा मे प्रतिदिन हुआ करता था। यही बंगाल मे रचित सबसे पुराना ाभारत काव्य है। कवि का नाम सचमुच ही कवीन्द्र था अथवा यह र्की उपाधि थी यह ठीक ठीक जानने का कोई उपाय नहीं है। कोई कोई ते हैं कि कवि का नाम परमेश्वर था। कवीन्द्र का काव्य १५२५ ई० के ास पास किसी समय लिखा गया होगा।

कारण प्राचीन साहित्य के प्रेमी अत्यन्त पुलकित हुए। बंगला भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की आलोचना के लिए उत्कृष्ट सामग्री प्राप्त हो गई इसलिए भाषातत्त्वविद् उत्साहित हो उठे।

किन्तु यह बात भी नहीं हुई कि कुछ वितंडावाद की सृष्टि न हुई हो। यह वितंडा अभी तक पूर्णरूप से नहीं मिटा है। आज तक जो लोग आधुनिक भाषा में चंडीदास के पद पढ़ कर मुग्ध होते आये थे, वे कहने लगे कि ऐसी विकट भाषा में लिखे पद चंडीदास के नहीं हो सकते। श्रीकृष्णकीर्तन काव्य आजकल के विचार से स्थान स्थान पर रुचिविगर्हित प्रतीत होता है। इसी बात को पकड़ कर बहुत से लोगों ने कहा कि यह काव्य बिल्कुल गँवारू है, श्रीचैतन्य चंडीदास के जिन पदों का आस्वादन करते थे वह पद इस कवि की रचना नहीं हो सकते।

किन्तु इसी चंडीदास का चंडीदास की भणिता वाले श्रेष्ठ पदों का रचयिता होना संभव है, इसका भी एक अवान्तर प्रमाण मिल गया। श्रीकृष्णकीर्तन का सुन्दर पद रूपान्तरित भाषा में प्रचलित कीर्तनपदावली में पकड़ लिया गया। फिर इस बात का प्रमाण मिलने में भी विलम्ब न लगा कि श्रीचैतन्य के समय में बड़ु चंडीदास का श्रीकृष्णकीर्तन काव्य अज्ञात नहीं था। श्रीचैतन्य के अन्यतम प्रधान परिषद् सनातन गोस्वामी ने स्वरचित श्रीमद्भागवत की टीका में एक स्थान पर चंडीदास द्वारा वर्णित दानखंड और नौकाखंड की लीला का उल्लेख किया है, यह दो लीलाएँ श्रीकृष्णकीर्तन में ही मुख्यभाव से वर्णित हुई हैं।

श्रीकृष्णकीर्तन से कवि के संबंध में केवल इतना ही पता चलता है कि कवि का नाम अथवा उपाधि बड़ु चंडीदास था और वह बासली देवी के सेवक थे। कुछ पदों के अन्त में "अनन्त बड़ु चंडीदास" ऐसी भणिता है। इसमें 'अनन्त' लिपिकार अथवा गायकों के प्रक्षेप के कारण आ गया अनुमान होता है। चंडीदास के संबंध में अनेक प्रवादकथाएँ और कपोल-कल्पनाएँ प्रचलित हैं। एक प्रवाद के अनुसार इनका जन्मस्थान वीरभूम के

न्तर्गत नान्नूर गाँव में था. दूसरे प्रवाद के मत में यह बाँकुड़ा नकटवर्ती छातना गाँव के रहने वाले थे। इसके अतिरिक्त प्रवाद में यह कहा गया है कि एक धोबिन इनकी साधनसंगिनी थी। इस महिला के ना के संबंध में भी विभिन्न प्रवादों में ऐकमत्य नहीं है। एक के मत में इस नाम तारा था, दूसरे के मत में रामतारा और तीसरे के अनुसार [illegible] वाद अंशतः भी ठीक है या नहीं, इसकी जाँच करने के योग्य सामग्री [illegible] क प्राप्त नहीं हुई है।

श्रीकृष्णकीर्तन काव्य के रचनाकाल का कुछ पता नहीं। [illegible] की लिखावट देख कर पेलिओग्राफिस्ट अर्थात् प्राचीनलिपिविशेषज्ञ कहते हैं कि यह पोथी अनुमानतः १४५० से १५२५ ई० के बीच में लिखी [illegible] ई है। इसमें तीन हाथों का लेख है और कुछ मूल [illegible] सुतरां यह कवि की अपनी लिखी मूल पोथी तो निश्चय ही नहीं है [illegible] मान लिया जाय कि पोथी कवि के समय में ही लिखी गई थी [illegible] का रचना काल १५२५ ई० से पहले ठहरता है। मालूम [illegible] यह काव्य पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण अथवा [illegible] गया था।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसका रचयिता बंगाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक है।

(४)

मैथिली-साहित्य और विद्यापति

पाल और सेन वंश के राज्यकाल में तीरभुक्ति (तिर्हुत) अथवा मिथिला संस्कृति एवं साहित्यचर्चा में बंगला से स्वतंत्र नहीं थी। बंगला और मैथिल भाषा दोनों ही मागधी प्राकृत से उत्पन्न हुई हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में इन दोनों भाषाओं के बीच का पार्थक्य उस पार्थक्य से अधिक नहीं था जो आधुनिक बंगला की किन्हीं दो भाषाओं में पाया जाता है। बंगला और मैथिल दोनों ही भाषाओं में कृष्णलीलात्मक एवं आध्यात्मिक गानों के साथ ही साहित्य का आरम्भ हुआ। दोनों ही साहित्यों का प्राचीन तम आदर्श जयदेव के पद थे।

तेरहवीं शताब्दी में तुर्कों द्वारा विजित होकर बंगला तिर्हुत से अलग ज रहा। बीच बीच में मुसलमान शक्ति से आक्रान्त होने पर भी अलग द शताब्दियों तक मिथिला की स्वाधीनता अक्षुण्ण बनी रही। इसी कारण चौदहवीं शताब्दी में भी मिथिला में साहित्यचर्चा का निदर्शन मिलता है पर बंगाल प्रान्त में इसी समय की लिखी किसी रचना का पता आज त नहीं मिला है।

कृष्णलीला विषयक पद बंगला में पन्द्रहवीं शताब्दी से मिलते हैं। कि मिथिला में १४ वीं शताब्दी में रचित बहुत से पद मिले हैं, तथा टूटी फू गद्य में भी लिखी हुई एक पुस्तक पाई गई है। मिथिला के कर्नाटवंशीय र (हरसिंह अथवा हरिसिंह) देव के मंत्री उपाध्याय उमापति ने संस्कृत प्राकृत भाषा में पारिजातहरण नाम से एक नाटक की रचना की। २ इक्कीस मैथिली भाषा के पद हैं। इन पदों की भणिता में कवि ने राजा व राजमहिषी का भी उल्लेख किया है। हरिसिंह देव दिल्ली के मुसलम

ग्यासुद्दीन तुगलक (१३२०—२४) से लड़ कर भी मिथिला की स्वाधीन
। रक्षा करने में सफल हुए थे, अतएव वह 'हिन्दूपति' नाम से विख्या
ए। कई पदों में उमापति ने इनका उल्लेख "हिन्दूपति" कह कर ही कि
। जैसे—

सकल नरेश मुकुट मनि, पट महिपी विरमान।
हिन्दूपति रसविन्दक, सुमति उमापति भान॥

मापति के कितने ही पद आजकल विद्यापति के नाम से प्रचलित हैं।

हरिसिंह देव के दूसरे सभासद पंडित थे ज्योतिरीश्वर। इनकी उप
विशेखराचार्य थी। इन्होंने संस्कृत में कई ग्रंथों की रचना की थी। इ
क प्रहसन है जिसका नाम धूर्त्तसमागम है। ज्योतिरीश्वर ने मातृभाषा
ी गद्य की एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का नाम वर्णरत्नाकर है।
पुस्तक सम्प्रति श्रीयुक्त सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय एवं श्रीयुक्त बबुआ
ी सम्पादकता में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रका
ई है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में मिलने वाली सबसे प्राचीन
पुस्तक होने के कारण इसका बड़ा महत्त्व है। वर्णरत्नाकर कवियों एवं क
लोगों का 'कड़चा' ग्रंथ है। इसमें शहर, बाजार, राजसभा, नायक नायि
प्रभात, सन्ध्या इत्यादि का साधारण वर्णन संक्षेप में दिया हुआ है। स
बीच में तुकबन्दी से लदे हुए छन्दोमय वाक्य मिलते हैं।

मिथिला के श्रेष्ठ कवि एवं आधुनिक भारतीय साहित्य के एक महान् स
विद्यापति ने १४ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में जन्म लिया। वे ब्राह्मण
और इन्होंने तिर्हुत के कई एक राजाओं की सभा में रह कर पद रचना
थी। विद्यापति के अधिकांश पदों की भणिता में शिवसिंह देव का नाम दे
जाता है। इन्हीं के राज्यकाल में विद्यापति की प्रतिभा ने उज्ज्वलतम
धारण किया था।

विद्यापति ने संस्कृत भाषा में भी कितने ही स्मृति और व्यवहार ग्रंथों
रचना और संकलन किया था। इनमें से भूपरिक्रमा, लिखनावली, गंगावाक

वर्ल।, दुर्गाभक्तितरगिणी और पुरुषपरीक्षा उल्लेख योग्य हैं । पुरुषपरी
नामक पुस्तक का चलन बगाल देश मे खूब था । १९वीं शताब्दी के आरम्भ
में हरप्रसाद राय द्वारा इस पुस्तक का बगला गद्य मे अनुवाद हुआ ।

विद्यापति की दो पुस्तकों की रचना अवहट्ट अथवा अर्वाचीन अ
में हुई थी । इन दो पुस्तकों का नाम कीर्तिलता और कीर्तिपताका है । कीर्ति
लता ऐतिहासिक काव्य है । कवि के आरम्भिक जीवन के पृष्ठपोषक भ्रातृ
कीर्तिसिंह और वीरसिंह के पिता असलान नामक एक तुर्की आक्रमणकारी
हाथ से मारे गये थे । जौनपुर के अधिपति इब्राहीमशाह की सहायता
उन्होंने असलान को पराजित किया । यही कीर्तिलता का वर्णनीय विषय है
अवहट्ट भाषा मे विद्यापति ने कुछ फुटकर पदों की भी रचना की है । शिव
देव के पिता देवसिंह देव के राज्यकाल मे विद्यापति ने मैथिली भाषा
पदरचना आरम्भ की । इस समय के लिखे हुए पदों की भणिता में राजा
रानी का नाम पाया जाता है । जैसे—

विद्यापति कवि गाओल रे, रस बूझ रसमन्त ।
देवसिंह नृप नागर रे, हासिनी देवी कन्त ॥

पहले भी कह चुके हैं कि विद्यापति के अधिकांश पदों में शिवसिंह के स
प्राय उनकी महिषी लखिमा (अथवा लछिमा) देवी का नाम पाया
है । कहा-कहीं अन्य रानियों का भी नाम देखा जाता है । राजपरिवार
बहुत से व्यक्तियों एवं एकाधिक मंत्रियों और उनकी पत्नियों के नाम कु
पदों में मिलते हैं । यह सभी कवि के पृष्ठपोषक थे । उस समय कवि
ख्याति विशेषभाव से फैल गई थी, यह इसका एक प्रमाण है ।

विद्यापति की कविता अलंकारमय और चित्रबहुल है । वह संस्कृत म
के पण्डित थे, अतएव उनका काव्य संस्कृत का अनुसरण करने वाला है
उन्होंने अनेकों संस्कृत काव्यों एवं उद्भट सूक्तियों से भाव और भाषा
संग्रह किया था । वर्णनशैली के संयत एवं वर्णाढ्य होने के कारण
के द्वारा अंकित किशोरी एवं युवती राधा का चरित्र जैसा सुपरि

आ है ऐसा अन्य किसी पदकर्ता के काव्य में नहीं देखा जाता। थिली भाषा की ह्रस्वदीर्घ स्वरबहुल ध्वनि एवं मात्रिक छन्दों से विद्यापति के ों में विचित्र प्रकार की झंकार ध्वनित होती है।

विद्यापति एवं उनके पूर्ववर्ती मैथिल कवियों के पदों ने बंगाल और इत्तर बंगाल अर्थात् आसाम और उड़ीसा में एक नवीन काव्यभाषा और ाश्रित पदावली साहित्य की सृष्टि की। १५वीं शताब्दी में लगभग एक समय पर बंगाल, आसाम और उड़ीसा में मैथिलपदों के अनुकरण पर जबोली पदों की रचना का सूत्रपात हुआ। ब्रजबोली की उत्पत्ति का विवरण हले दिया जा चुका है।

१५वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से बहुत सारे बंगाली पदकर्ता विद्यापति े अनुकरण पर ब्रजबोली के पदों की रचना करके यशस्वी हो गये हैं। सेनशाह के एक कर्मचारी कविशेखर राय ने—जिनका असली नाम वकीनन्दन सिंह था—विद्यापति नाम की भणिता में भी कितने ही पदों ी रचना की थी। विद्यापति के पदों की तुलना में इनके पद कुछ निकृष्ट ही थे, इसी कारण यह 'द्वितीय विद्यापति' कहलाते थे। विद्यापति की भणिता से युक्त जिन पदों में हुसेनशाह का उल्लेख है वह सब इन्हीं की चना है। यह हुसेनशाह के पुत्र नुसरतशाह एवं गयासुद्दीन की सभा में भी वर्त्तमान थे क्योंकि इनके एकाध पद में इनका नाम मिलता है। इन वेद्यापति ने बंगला में भी पदरचना की थी। १६वीं शताब्दी में अन्य जिन अनेकों कवियों ने विद्यापति के समान कुशलता ब्रजबोली की पदरचना में प्रदर्शित की थी उनमें से कविरंजन, कविवल्लभ, एवं गोविन्ददास कविराज वेशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं।

विद्यापति के पद मिथिला में अधिक प्रचलित नहीं थे। चिरकाल से वेद्यापति के पद समादृत होते आये हैं। विशेष कर वैष्णव पदकर्ताओं और कीर्तनकारों की कृपा से प्राचीन मैथिल कवि के यह पद सुरक्षित होकर हम लोगों को प्राप्त हुए हैं। पदामृतसमुद्र, पदकल्पतरु, गीतचिन्तामणि प्रभृति

कवि भय और विस्मय मे विमूढ होकर, पास मे जो एक रुपया था उस देवी को देने वाले ही थे, उसी समय—

चरणों में चींटी ने काटा क्षमानन्द देखा फिर कर
सम्मुख मोचिन हुई अदृश्य।

कवि का विस्मय तब चरम सीमा को पहुँच गया। इसके पश्चात् देवी उनको अपना स्वरूप दिखलाया। कवि वर्णन करते हैं—

भुजगभूषा से वेष्ठित अवतरीं मध्य मैदान मे
देख कर मेरे मुख पर उडी हवाई
पाया मनस्ताप देखे अनेकों साप
कितनों ने ही मुझे लपेटा॥

देवी ने कहा—हमारा जो यह रूप देखा है, इसको किसी से न कह कहने से तुम्हारा भला नहीं होगा, तुम हमारी कथा का काव्य रचकर फिरो, तुम्हारा भला होगा!

यही क्षेमानन्द की काव्यरचना का 'इतिहास, है।

एक अन्य क्षेमानन्द द्वारा रचित एक बहुत ही छोटा मनसामगल क मानभूम के पुरुलिया प्रदेश मे पाया गया है। काव्य की दृष्टि से यह निन्दनीय नहीं है। विष्णुपाल के मनसामगल की पोथी वीरभूम प्रदेश में प गयी है। इस काव्य में अनेकों विशेषताएँ हैं। इसका १६ वीं शताब्दी रचना होना भी कुछ विचित्र नहीं है। कालिदास का मनसामगल १६ शकाब्द अर्थात् १६६७-६८ ई० मे रचा गया था। यह वर्द्धमान और वीर के सीमान्त के निवासी थे। दिनाजपुर प्रदेश के अधिवासी जगजीवन घो के मनसामगल में कुछ कुछ नवीनता है।

"द्विज" हरिराम के काव्य एव "द्विज" जनार्दन द्वारा विरचित व्रतक ढग के बहुत छोटे से काव्य मगलचडी-पाचाली को छोड कर और कोई चडीमगल-काव्य सत्रहवीं शताब्दी मे नहीं रचा गया मालूम पडता। काव्य मे केवल धनपति का उपाख्यान है, कालकेतु का नहीं। इस समय

ये हुए सभी देवीमाहात्म्य-सूचक काव्य मार्कण्डेय-पुराण के अन्तर्गत
र्गासप्तशती अथवा चंडी के आधार पर लिखे गये हैं। "द्विज" कमललोचन
ा 'चंडिकामंगल' अथवा 'चंडिकाविजय', अथ कवि भवानी प्रसाद राय का
र्गामंगल एवं रूपनारायण घोष का दुर्गामंगल इसी कोटि के काव्य हैं।
मललोचन रंगपुर जिले के घोड़ाघाट परगने के रहने वाले थे। भवानीप्रसाद
ौर रूपनारायण दोनों ही मयमनसिंह के अधिवासी थे। गोविंद दास का
ालिकामंगल भी इसी ढंग का काव्य है। परन्तु इसमें विक्रमादित्य का उपा-
ख्यान, मीननाथ की कहानी और विद्यासुन्दर की कथा भी दी हुई है। किसी
केर्मा के मत में गोविन्द दास का काव्य १५३४ शकाब्द अर्थात् १६१२-१३
ई० में रचा गया था।

शिव की गृहस्थी के सम्बन्ध में अथवा शिवमाहात्म्यसूचक दो एक छोटे
मोटे काव्य भी पाये गये हैं। "द्विज" रतिदेव का छोटा सा काव्य 'मृगलुब्ध
१५९६ शकाब्द अर्थात् १६७४-७५ में रचा गया था। अनुमान किया जाता
है कि यह चटगांव प्रदेश के निवासी थे। कवि चन्द्र का शिवायन अथवा
शिवमंगल विष्णुपुर के राजा वीरसिंह के राज्यकाल में अर्थात् १६५६-८२ ई०
के मध्य रचा गया था।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, एक कवि ने, उच्च कवित्व शक्ति
सम्पन्न न होते हुए भी काव्य की विषयवस्तु के निर्वाचन में असमान्यता
दिखलाई। यह कृष्ण रामदास हैं जो जाति के कायस्थ थे। इनका निवास-
स्थान कलकत्ते से उत्तर की ओर बेलघरिया के समीप निमिता अथवा निनता
गांव में था। इनके पिता का नाम भगवतीदास और पुत्र का नाम नीलकंठ
था। कृष्णराम के द्वारा रचित तीन काव्य मिले हैं। प्रथमकाव्य 'कालिका-
मंगल' है, इसमें देवी के माहात्म्य के प्रचार के बहाने विद्यासुन्दर की कहानी
कही गई है। यह काव्य शाइस्ता खाँ की सूबेदारी के समय में (१६६९-७०
अथवा १६७९-८९ ई० सम्भवतः पहली बार में) रचा गया था। उस समय
कवि की अवस्था बीस वर्ष की थी। दूसरी रचना 'षष्ठीमंगल' व्रतकथाजाति
का छोटा सा काव्य है। यह १६०१ शकाब्द अर्थात् १६७९-८० में लिखा

गया था। तीसरा काव्य 'रायमगल' एकदम नयी वस्तु है। इसमें सुन्दरवन प्रदेश मे उपस्थित व्याघ्र देवता दक्षिणराय की माहात्म्य कहानी का वर्णन है। आनुषगिक रूप मे इसी प्रदेश के मगर देवता कालूराय और पीर बड खाँ गाजी की कहानी भी इसमें दी हुई है। दक्षिणराय की पूजा सुन्दरवन प्रदेश, अर्थात् चौबीस परगने जिले के दक्षिणभाग और उसके निकट के प्रदेश, मे अब भी प्रचलित है। और इसी प्रदेश मे बड खाँ गाजी का गान अब भी उत्सवों के उपलक्ष में गाया जाता है। गाजीसाहब और कालूराय का गान मैमनसिंह प्रदेश में आजतक प्रचलित है।

'रायमगल' काव्य १६०८ शकाब्द अर्थात् १६८६ ८७ मे रचा गया था किन्तु दक्षिण राय के सम्बन्ध में यही प्रथम-काव्य नहीं है। कृष्णराम ने अपने पूर्ववर्ती एक कवि माधवाचार्य के काव्य उल्लेख किया है। 'रायमगल' की मूल आख्यायिका सक्षेप मे नीचे दी जाती है।

बडदह के वणिक् देवदत्त ने जलमार्ग से सिंहल से भी दूर तुरग शहर की जलयात्रा की। चडीमगल कहानी के धनपति ने जिस प्रकार समुद्र के वक्षपर "कमल मे कामिनी" का दृश्य देखा था, देवदत्त ने भी मार्ग मे वैसा ही आश्चर्यजनक व्यापार देखा—अर्थात् सागर के मध्य मे सुन्दरवन की प्रतिच्छाया। बातचीत मे इसी दृश्य व्यापार को देवदत्त ने तुरग के राजा सुरथ को बतला दिया और उसको भी वह दृश्य दिखलाने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो गया। इधर बहुत दिन बीत गये, देवदत्त का पुत्र पुष्पदन्त पिता का कोई समाचार न पाकर स्वय तुरग शहर जाने को प्रस्तुत हुआ। जहाज बनाने के लिये उसने रताई नामक बढई को वन से लकडी काटकर लाने का हुक्म दिया। उसी वन मे दक्षिणराय का अधिवास स्थान एक बडा वृक्ष था। उस वृक्ष के काटने पर दक्षिणराय के एक अनुचर ने राय के पास जाकर अभियोग किया। क्रुद्ध होकर राय ने छ बडे बडे बाघों को भेजा, उन्होंने रताई के छ भाइयों को मार डाला। रताई के भ्रातृशोक से आत्महत्या करने को उद्यत होने पर दक्षिण राय ने देव वाणी की कि उनके प्रियवृक्ष को काटने के अपराध के कारण उन्होंने उसके छ भाइयों का वध किया है, रताई यदि

नरबलि देकर दक्षिणराय की पूजा करे तो उसके छः सहोदर फिर जी उठेंगे। रताई ने यह सुनकर तत्काल दक्षिणराय की पूजा करके पुत्र का बलिदान किया। तब दक्षिणराय ने प्रकट होकर रताई के पुत्र और छहों भाइयों को जिला दिया।

रताई लकड़ी लेकर आया। हनुमान और विश्वकर्मा ने आकर नौका पाट दी। पुष्पदन्त ने सात नौकाएं जल में छोड़कर समुद्र यात्रा की। माता सुशीला की स्तवस्तुति से प्रसन्न होकर दक्षिणराय ने पुष्पदन्त की संकट में रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। मार्ग में पुष्पदन्त ने पीर बड़ खाँ गाजी का मुकाम और दक्षिणराय का पूजास्थान देखा। इस विषय में पुष्पदन्द कुछ जानता नहीं था, इस कारण उसके कौतूहल प्रकट करने पर कर्णधार ने पीर और दक्षिणराय की कहानी, उनके विरोध और मिलन का इतिहास इस प्रकार वर्णन करना आरम्भ किया।

पूर्वकाल में धनपति नामक एक सौदागर था। उसने वाणिज्य के लिये जाते हुए मार्ग में इस स्थान पर उतर कर दक्षिणराय की पूजा की। पीर की पूजा न करने पर फकीरों ने आकर उससे पीर की पूजा करने को कहा। वणिक् ने कुबुद्धि के वश में होकर फकीरों को मारकर भगा दिया। उन्होंने गाजी के पास जाकर नालिश की कि दक्षिणराय और उसके व्याघ्रानुचरों के प्रताप से अब कोई पीर का समादर नहीं करता; वे बड़ी दुर्दशा में पड़े हैं। गाजी ने क्रुद्ध होकर आदेश किया "दक्षिणराय को बाँध लाओ।" गाजी के आदेश से कालानल बाघ और फकीरों ने जाकर दक्षिणराय की प्रतिमा और पूजास्थान के घरद्वार को तोड़ डाला और मारपीट करके ब्राह्मण पुरोहित को भगा दिया। इधर वणिक् ने आकर दक्षिणराय को यह सब संवाद सुनाया। दक्षिणराय ने अपनी व्याघ्रसेना लेकर गाजी के विरुद्ध युद्धयात्रा की। गाजी की सेना भी बाघों की ही थी। राय का सेनापति हीरा नामक बाघ था और गाजी का सेनापति दाऊद बाघ था। दोनों दलों में युद्ध छिड़ गया, गाजी का दल हार कर भाग गया। गाजी तब स्वयं राय के साथ युद्ध करने के

वासवदत्ता के आधार पर लिखी गयी है, इसका रचनाकाल १७८५ श
अर्थात् १८३६-३७ ई० है। इसमें मदनमोहन ने छन्द रचना में
चातुर्य दिखलाया है। इनकी लिखी 'शिशुशिक्षा' नामक प्राथमिक
पुस्तक के तीन खंड भी उस समय खूब चले। कवित्व शक्ति में ईश्व
गुप्त मदनमोहन की अपेक्षा बहुत बढ़ कर थे। एक हिसाब से ईश्व
पुरातन पद्धति के अन्तिम और नूतन पद्धति के आदि कवि हैं। देश
इनके काव्य में एक नवीन ध्वनि या झंकार निकाली। इससे उस स
उदीयमान कवि और शिक्षित युवक इनकी ओर आकृष्ट हुए। ईश्व
एवं उनके शिष्यों के द्वारा ही बंगला काव्य के अभ्युदय की वार्ता
पित हुई।

ईश्वरचन्द्र के शिष्य उनके द्वारा संपादित 'संवादप्रभाकर' एवं 'र
साधुरंजन' में अपनी रचनाएँ प्रकाशित करते थे। बाद को इनमें से
कोई कवि, कोई नाटककार, कोई औपन्यासिक के रूप में यश प्राप्त क
हैं। इनमें द्वारकानाथ अधिकारी, रंगलाल बन्द्योपाध्याय, दीनबंधु मि
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रधान थे। हेमचन्द्र बन्द्योपाध्याय ने भी कुछ
में ईश्वरचन्द्र के मार्ग का अनुसरण किया था।

ईश्वरचन्द्र ने बंगला काव्य में जिस आधुनिकता का सूत्रपात कि
वह उनके श्रेष्ठ शिष्य रंगलाल की कविता में विकसित हो उठी। रं
बन्द्योपाध्याय का जन्म कालना के पास बाकुलिया गाँव में १८२७ में
१८८७ में इन्होंने देहत्याग किया। रंगलाल के ज्येष्ठभ्राता गणेशच
कविता करते थे। रंगलाल ने अंग्रेज़ी और संस्कृत दोनों में समान
योग्यता प्राप्त की थी। गुरु के समान इन्होंने भी पहले कविगान की
की। उस समय की विविध पत्रिकाओं में इनकी कविता और प्रबन्ध प्र
होते थे। छोटी छोटी कविताओं, तथा संस्कृत और अँग्रेज़ी से अनूदित
और काव्यों को छोड़ कर इन्होंने चार मौलिक काव्यों की रचना
इनके नाम "पद्मिनी उपाख्यान" (१८५८), "कर्मदेवी" (१८६२),
सुन्दरी" (१८६८) एवं "काञ्ची कावेरी" (१८७९) हैं। पद्मिनीकाव

यवस्तु मेवाड़ की रानी पद्मिनी और सम्राट् अलाउद्दीन की कहानी है। मंदेवी और सूरसुन्दरी की विषय वस्तु भी राजपूत इतिहास से ली गयी है। ञ्चीकावेरी के मूल में उडीसा की एक राजकन्या की प्राचीन ऐतिहासिक हानी है। रंगलाल का पहले पहल प्रकाशित काव्य है 'भेक मूषिक' का द्ध (१८५८ ई०)। यह क्षुद्र काव्य ग्रीक कवि होमर के नाम से प्रचलित एक ग काव्य का अनुवाद है।

रंगलाल के काव्य का मूलस्वर देशप्रीति और स्वाधीनता प्रियता है। नके गुरु के काव्य में देश प्रेम स्फुटित तो हुआ था किन्तु वह प्रेम आत्मम-तन न था। इसके अतिरिक्त ईश्वरचन्द्र स्वाधीनता प्रियता की सीमा को हीं पहुंचा सके थे। रंगलाल गुरु की अपेक्षा एक उछाल आगे चले गये हैं। गलाल ने अंग्रेज कवि स्काट, मूर और बायरन की रचनाओं से अनेक भाव कर उनको आत्मसात् कर लिया है, ईश्वरचन्द्र में इतनी अधिक क्षमता हीं थी। और सब से अन्तिम बात यह है कि ईश्वरचन्द्र संवादपत्रसेवी थे, तरा साधारण लोगों की मनस्तुष्टि के लिये उनको भँडैती भी करनी पड़ती ी। रंगलाल का ऐसा दुर्भाग्य नहीं था। रंगलाल वास्तव में आधुनिक बंगला ाहित्य के प्रथम कवि हैं। तथापि पहले की धारा को वह एकदम काटकर हीं फेंक सके, पूर्ववर्ती साहित्य की प्रथा के अनुसार उनके काव्य में भी पाख्यान और वर्णनात्मकता प्रधान है।

दीनबंधु मित्र ने पहले पहल तो कविता लिखी, पीछे वे नाटक और न लिखकर यशस्वी हुए और उन्होंने काव्यरचना को छोड़ दिया। बंधु की कविता में कोई विशेषता नहीं है, तथापि हास्य-रसात्मक छडा ीय कविता रचना में इनको कुछ दक्षता प्राप्त थी। इनके नाटकों के र में आगे आलोचना होगी।

इस प्रसंग में कृष्णचन्द्र मजूमदार का (१२४४-१३१३ बं) भी नामोल्लेख श्यक है। इनका काव्य प्रधानतया धर्म और नीतिविषयक है। कृष्णचन्द्र रचना में संस्कृत एवं फारसी की छाया है। इसका प्रथम और श्रेष्ठ काव्य

करते थे। इस अभाव को दूर करने की चेष्टा ही से १६ वीं शताब्दी के पाँचवे दशक मे बगला नाटकरचना का सूत्रपात हुआ। इससे पहले जो दो एक सस्कृत नाटक अथवा प्रहसनो के अनुवाद प्रकाशित हुए थे, उनको काव्यानुवाद कहना ही सगत होगा, किसी किसी मे थोडा बहुत कथोपकथन होने पर भी वह अभिनय के लिये नहीं रचे गये थे। नाटक के रूप मे रचित पहला है विश्वनाथ न्यायरत्न द्वारा अनूदित प्रबोध चद्रोदय। इसका रचना काल १२४६ अर्थात् १८३६ ई० है। रचनाकाल के ३२ वर्ष के बाद १२७८ साल अर्थात् १८७१ ई० मे यह पहले पहल प्रकाशित हुआ। जहाँ तक पता चलता है उससे बोध होता है कि १८४६ ई० मे प्रकाशित नीलमणि पाल की "रत्नावली" नाटिका ही प्रथम मुद्रित बगला नाटक है। पर प्रथम मौलिक नाटक है ताराचरण शिकदार का "भद्रार्जुन" (१८५२ ई०)। इसके पश्चात् १८५२ ई० से बगला नाटक रचना अविच्छिन्न भाव से चली आ रही। प्रथम युग के बगला नाटक अधिकांश मे सस्कृत नाटकों की कथा के आधार पर लिखे जाते थे। मौलिक नाटको की विषयवस्तु सब सामाजिक होती थी, जैसे विधवा-विवाह, बहुविवाह इत्यादि। १८५३ मे प्रकाशित हरचन्द्रघोष का "भानुमती चित्तविलास" शेक्सपियर के मर्चेण्ट आफ वेनिस के आधार पर लिखा गया था। प्रथम दो वियोगातक नाटक हैं योगेद्रचद्र का "कीर्तिविलास" (१८५२ ई०) एव उमेशचद्र मित्र का "विधवाविवाह" नाटक (१८५७ ई०)। कालीप्रसन्न सिह ने जिन चार नाटको की रचना की थी उनमे से प्रथम "बाबूनाटक" १८५३ अथवा १८५४ ई० मे प्रकाशित हुआ। नन्दकुमारराय का "अभिज्ञान शाकुन्तल" १८५५ ई० मे प्रकाशित हुआ एव १८५७ ई० की ३० जनवरी को आशुतोष देव के घर मे अभिनीत हुआ। मुद्रित बगला नाटक का यही प्रथम अभिनय था।

बगला नाटक के आदि-युग के प्रधान नाट्यकार रामनारायण तर्करत्न थे (१८२२-१८८६ ई०)। यह सस्कृत कालेज के छात्र थे और पीछे अध्यापक भी हो गये थे। नाटक की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट न होते हुए भी रामनारायण के नाटक अभिनय मे अच्छे ही उतरते थे, नाटककार "नाटकी रामनारायण"

नाम से विख्यात हो गये थे। इनका प्रथम नाटक "कुलीनकुलसर्वस्व"
८५४ ई० मे प्रकाशित हुआ। इसको एव १८६६ ई० मे प्रकाशित नवनाटक
छोड कर रामनारायण के और सभी नाटक पौराणिक विषयों अथवा
कृत नाटकों की कथा के आधार पर रचे गये थे। इन्होंने कई एक प्रहसन
लिखे हैं।

नाटक एव प्रहसन को लेकर ही अद्वितीय प्रतिभा सपन्न कवि माइकेल
धुसूदनदत्त अग्रेजी साहित्य की चर्चा छोड कर बगला साहित्यक्षेत्र मे अव-
र्ण हुए। । जान पड़ता है कि बगला साहित्य के लिये वही दिन सबसे
भदिन था। १२६५ साल अर्थात् १८५८ ई० मे "शर्मिष्ठा" नाटक प्रकाशित
आ। यही बगला का प्रथम उत्कृष्ट नाटक है। इसके पश्चात् आगामी वर्ष
क्रमश: नये पथ और पुराने पथ वालों की खिल्ली उडाते हुए "क्या सभ्यता
सी का नाम है?" एव "बूढे सालिक की गर्दन मे रुआँ" दो प्रहसन लिखे
ये। इन दोनो प्रहसनों के विषय मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि परवर्ती
ाल के सभी प्रहसन इन्हीं के साँचे मे ढले हैं और यह दोनों अभी तक
पराजित हैं। १२६६ ई० मे ही मधुसूदन के और दो नाटक कृष्णकुमारी
ाटक और पद्मावती नाटक प्रकाशित हुए। मधुसूदन की काव्य प्रतिभा की
ालोचना आगे चल कर करेंगे।

मधुसूदन के नाट्यरचना परित्याग करने पर बगला के श्रेष्ठ नाटककार का
ाविर्भाव हुआ। दीनबधु मित्र के "नीलदर्पण" के १८६० ई० मे ढाका से
काशित होने पर केवल बगला साहित्यक्षेत्र मे ही नहीं समाज एव राष्ट्र
भी खलबली मच गयी।

कॉचड़ापाडे के कुछ कोस उत्तर पूर्व मे. नदिया जिले के चौबेड़िया गॉव
१२३६ ब० अर्थात १८३० ई० मे दीनबधु मित्र का जन्म हुआ। बाल्य-
ाल में कलकत्ते मे हिन्दू स्कूल मे और तत्पश्चात् हिन्दू कालेज मे उन्होंने शिक्षा
ई। छात्रावस्था मे ही वह ईश्वरचन्द्र गुप्त के अनुकरण पर कविता किया
रते थे। आरम्भिक अवस्था की उनकी बहुत सी कविताएं ईश्वरचन्द्र द्वारा
म्पादित पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुई थीं। कालेज परित्याग करके दीनबंधु

पत्रिकाओं में कुछ कुछ प्रकाशित हुआ करती थीं। "टेकचाँद ठाकुर', छद्म नाम से प्यारीचाँद मित्र ने (१८१४-१८८३) १८५७ ई० में कलकत्ता प्रदेश के धनीगृह का चित्र लेकर एक उत्कृष्ट नक्शा अथवा व्यंग गल्प प्रकाशित की। पुस्तक का नाम "आलालेर घरेर दुलाल" (=धनी घर का दुलाल) है। पुस्तकाकार प्रकाशित होने के पहले यह "मासिकपत्रिका" नामक सामयिक पत्र में प्रकाशित हुई थी। यह पत्रिका स्त्रियों को सुशिक्षा देने के लिये स्थापित हुई थी। सुशिक्षा के अभाव में धनियों की सन्तान किस प्रकार नष्ट होती है यही बात "आलालेर घरेर दुलाल" में दिखलायी गयी है। कहानी की अपेक्षा पुस्तक की भाषा विशेषरूप से द्रष्टव्य है। प्यारीचाँद ने इस पुस्तक में प्रधानत बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, उसके साथ में कुछ साधुभाषा के शब्द भी हैं। विद्यासागर के युग में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करके प्यारीचाँद ने यथेष्ट साहस दिखलाया है। शिक्षित तथा अशिक्षित सहजबोध्य होने पर भी इसमें यथेष्ट दोष थे। यह मौखिक बोलचाल की भाषा भी नहीं थी और लिखित भाषा भी नहीं। तो भी परवर्ती काल में बंकिमचन्द्र प्रभृति नवीन प्रणाली के लेखकों पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। "आलालेर घरेर दुलाल" में बंगला उपन्यास का कुछ पूर्वाभास मिलता है इसमें संदेह नहीं है। इस पुस्तक में ठक चाचा का चरित्र जिस तरह जीवत भाव से प्रकट हुआ है उससे यह कहा जा सकता है कि यह चरित्रांकन अंग्रेजी साहित्य के श्रेष्ठ औपन्यासिक डिकेन्स से किसी प्रकार भी कम नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका आदर्श भवानीचरण का बाबूविलास था। प्यारीचाँद की दूसरी उल्लेख योग्य रचना "अभेदी' की भाषा बहुत कुछ साधुभाषा युक्त है। इसको धर्ममूलक आख्यायिका कहा जा सकता है।

अब मैं पहले एक से अधिक प्रसंग में कालीप्रसन्न सिंह (१८४०-७०) का नामोल्लेख किया जा चुका है। यह एक अद्भुतकर्मा एवं बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। तीस वर्ष की अल्प आयु में यह साहित्य, देश और समाज के लिए इतने हितकर कार्य कर गये कि जिन पर विचार करने से ही विस्मय होता है। तेरह वर्ष की अवस्था में १८५३ ई० में इन्होंने बंगभाषा के

अनुशीलन के लिये विद्योत्साहिनी सभा की प्रतिष्ठा की। इस सभा की ओर से बंगला काव्यरचना के लिये मधुसूदन दत्त को तथा "नीलदर्पण" का अनुवाद प्रकाशित करने के लिये लोंग साहब को बधाई दी गयी थी। सभा की मुखपत्रिका "विद्योत्साहिनी" पत्रिका के अतिरिक्त उन्होंने और कई एक पत्रिकाओं का सम्पादन किया। पाँच नाटक प्रकाशित करने के उपरान्त कालीप्रसन्न ने "हुतोमप्याँचार नक्शा" की रचना की। इसका प्रथम भाग १८६२ ई० और द्वितीय भाग इसके थोड़े समय पश्चात् प्रकाशित हुआ। उस समय नीजत्यौहार सभा-समिति इत्यादि जिस किसी में जो कुछ भँड़ैती और वीभत्सता उन्होंने देखी उसको उन्होंने "हुतोमप्याँचार के नक्शे" (उल्लू का नक्शा) में उज्ज्वलभाव से अंकित करके उस पर परिहास और व्यंग के कोड़े की चोट की। हुतोम की भाषा यथार्थ में बोलचाल की भाषा पर प्रतिष्ठित है, यह "आलालेर घरेर दुलाल" की भाषा के समान मिश्रभाषा नहीं है।

कालीप्रसन्न की अक्षयकीर्ति अठारहपर्व महाभारत के गद्यानुवाद का प्रकाशन है। इस कार्य में उन्हें विद्यासागर प्रमुख अनेक बड़े बड़े पंडितों से सहायता मिली थी। महाभारत प्रकाशित करने में आठ नौ वर्ष लगे, इनका प्रथम खंड १८५८ ई० में एव अन्तिम खंड १८६६ ई० में प्रकाशित हुआ।

(३४)

मधुसूदन और उनका परवर्ती बंगला काव्य

आधुनिक बंगला साहित्य के युगप्रवर्तक महाकवि मधुसूदनदत्त ने १८२४ ई० की २५ जनवरी को जशोर जिले में कपोताक्ष के तट पर स्थित सागरदाँड़ि गाँव में जन्म लिया। इनके पिता का नाम राजनारायण दत्त था और माता का जान्हवी। पिता माता के एकमात्र जीवित पुत्र होने के कारण मधुसूदन का शैशव और बाल्यकाल अत्यधिक आदर से बीता। गाँव की पाठशाला में कुछ दिन पढ़कर मधुसूदन कलकत्ते आये और हिन्दू कालेज में अध्ययन करने लगे। राजनारायण कलकत्ते की सदर दीवानी अदालत में

वकालत करते थे और खिदिरपुर में रहते थे। भूदेव मुखोपाध्याय और राज-नारायण वसु प्रभृति हिन्दू कालेज में मधुसूदन के सहपाठी थे। यहाँ छात्ररूप में मधुसूदन ने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। किन्तु इनके अन्दर जो असामान्य तेज एवं तीव्र अभिलाषा उसने अनुचित प्रश्रय पाकर इनकी भविष्य दुर्दशा की सूचना दी। अंग्रेजी साहित्य के रस एवं अंग्रेज अध्यापकों के साहचर्य को पाकर स्वसमाज एवं स्वधर्म के प्रति मधुसूदन की आस्था कम हो गयी। ईसाई होकर मन एवं प्राण से पूरे साहब हो सकेंगे इस दुराशा की छलना से मधुसूदन १८४३ ई० में उन्नीस वर्ष की अवस्था में ईसाई धर्म में दीक्षित हुए। अब उनका नाम माइकेल मधुसूदन दत्त हुआ। इसके उपरान्त पाँच वर्ष तक उन्होंने ईसाई पादरियों के शिक्षणालय बिशप्स कालेज में हिब्रू, ग्रीक, लेटिन, एवं संस्कृत भाषाओं को उत्तम प्रकार से सीखा। इसके पश्चात् मद्रास जाकर विद्यालय में शिक्षकता करके एवं समाचार पत्रों में लेख लिख कर जीविका उपार्जन करते रहे। कविजीवन का सूत्रपात भी वहीं हुआ। मद्रास में रहते हुए ही उन्होंने केप्टिव लेडी (Captive Lady) तथा विजिन्स आफ दिपास्ट (Visions of the Past) नामक दो अंग्रेजी काव्यों की रचना की। पहले जिस अंग्रेज महिला से पाणिग्रहण किया था उसके मनोमालिन्य हो जाने पर मधुसूदन ने फिर एक दूसरी अंग्रेज युरोपीय महिला से विवाह किया। कुछ समय पश्चात् माता पिता के परलोक गमन का समाचार सुनकर मधुसूदन स्वदेश को लौट आये। इसी बीच में उनकी अधिकांश पैतृक सम्पत्ति हाथ से निकल चुकी थी। मधुसूदन पुलिस कोर्ट में नौकरी करने लगे, एवं अंग्रेजी में काव्य रचना के प्रयास को व्यर्थ समझ कर उन्होंने मातृभाषा के अध्ययन में मनोनिवेश किया। बंगला में अच्छे नाटकों का अभाव देख कर पहले उन्होंने नाटक और प्रहसन रचना में चित्त लगाया, "शर्मिष्ठा" नाटक (१८५८), क्या इसीको नाम सभ्यता है? (१८६०), एवं "पद्मावती" नाटक (१८६०) प्रकाशित हुए। नाटक रचना करते करते उनको एक ऐसी प्रेरणा आई कि जिससे बंगला काव्य साहित्य का बाह्यरूप एकदम बदल गया। उन्होंने अमिताक्षर अथवा अमित्राक्षर छन्द की सृष्टि

की। इसी छन्द मे रचित "तिलोत्तमा" सभव काव्य १८५९ ई० के विविधार्थ सग्रह मे प्रकाशित होता रहा एव १८६० मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् इसी छन्द मे "मेघनाद" वध का प्रथमभाग (१८६२), द्वितीय-भाग (१८६२), "वीरागना काव्य" (१८६१) एव विचित्र अन्त्यानुप्रास वाले छद मे "व्रजागना काव्य" (१८६१) प्रकाशित हुए। आधुनिक बंगला साहित्य की सर्वप्रथम कविचित्त की आत्मप्रकाश मूलक (Subjective) कविता "आत्मविलाप" १८६१ ई० मे तत्वबोधिनी पत्रिका मे प्रकाशित हुई। काव्य सृष्टि की उन्मादन के काल मे भी मधुसूदन ने नाटक रचना का बिल्कुल परित्याग नहीं कर दिया था, १२६६ ब० मे उनका कृष्णकुमारी नाटक प्रकाशित हुआ। मृत्यु से पहले उन्होंने और भी दो नाटकों की रचना मे हाथ लगाया था, उनमे से एक को तो समाप्त नहीं कर सके, दूसरा—"मायाकानन"—सम्पूर्ण तो कर दिया परन्तु प्रकाशित होने के पहले ही उनका तिरोभाव हो गया। विलायत जाने की वासना मधुसूदन को निरन्तर लगी रहती थी पर सुयोग के अभाव से जा नहीं सकते थे। अन्ततोगत्वा १८६२ ई० के जून मास मे उन्होने बैरिस्टरी पढने के लिए विलायत की यात्रा की। वहाँ पाँच साल रहकर फ्रेंच इटालियन प्रभृति विविध यूरोपीय भाषाओं को सीखा। अर्थाभाव मे पड़कर जब वह विलायत मे घोर कष्ट पा रहे थे तब विद्यासागर महाशय ने उनको आर्थिक सहायता देकर उनका उद्धार किया। उनकी सहायता के बिना कवि का बैरिस्टरी पास करना तो रहा दूर, उनके प्राण भी बचते या नहीं इसमे भी सन्देह है। देश लौट आने पर उन्होंने विद्यासागर से पिता के सदृश् अभ्यर्थना और सहायता पायी। फ्रास देश मे प्रवास के समय कवि ने १८६५ ई० में चतुर्दशपदी कवितावली (sonnets) की रचना की। बगला साहित्य मे यही प्रथम सौनेट अथवा चतुर्दशपदी रचना है। मधुसूदन के पश्चात् अनेक कवियो ने सौनेट् लिखे अवश्य किन्तु उनमे से कोई भी, यहा तक रवीन्द्रनाथ तक, मधुसूदन के समान सफल नहीं हो सके। १८६७ ई० मे देश लौट कर मधुसूदन ने बैरिस्टरी आरम्भ की, किन्तु उनमे वह कुछ अधिक नहीं पा सके। उनकी आर्थिक और मानसिक अवस्था

समान अमिताक्षर छन्द का इतनी सफलता के साथ प्रयोग न कर सका
हिमालय के सर्वोच्च शिखर के सदृश् मधुसूदन का काव्य बंगला में उन्नतशी
और एकाकी है। मधुसूदन की श्रेष्ठता का यही प्रकृष्ट प्रमाण है।

मधुसूदन के परवर्ती दो कवियो की कविता में विदेशी काव्यसुल
अनुभूति प्रधान दृष्टिकोण का प्रथम दर्शन होता है। यह दो कवि विहारीलाल
चक्रवर्ती (१८३५-७४) एवं सुरेन्द्रनाथ मजुमदार (१८३८-७८) हैं
विहारीलाल ने सस्कृत कालेज मे शिक्षा पाई थी। १२६५ व० मे इन्हो
"पूर्णिमा" पत्रिका प्रकाशित की, इसमें इनकी कई एक कविताएँ प्रकाशि
हुई। इसके पश्चात् इन्होने "अवोधबन्धु" नाम कपत्रिका का सपादन किया
इसमे "वगसुन्दरी" काव्य का कुछ अश प्रकाशित हुआ। विहारीलाल
श्रेष्ठ काव्य "सारदामगल" की रचना १२७७ व० मे आरभ हुई और १२८
व० मे यह "आर्यदर्शन" पत्रिका मे खडश प्रकाशित हुआ। इसके अतिरि
विहारीलाल ने वगसुन्दरी, "साधेरआसन" (= साध का आसन) प्रभृ
और भी कई काव्या की रचना की। विहारीलाल शब्दशिल्पी नहीं थे, भा
मे भी यथष्ट शिथिलता है एव काव्य का वस्तु गठन (प्लाट) भी प्रगा
प्रभावोत्पादक नहीं है। किन्तु कवि की अनुभूति का स्वत स्फूर्त प्रकाश
विहारीलाल के काव्य की असाधारणता है। छन्द की लघुता और लालि
मे भी कवि ने बहुत नवीनता दिखलायी है। सब्लाइम अर्थात् विराट्
महिमा को कवि ने हिमालय के वर्णन मे जिस प्रकार व्यक्त किया है व
अत्यन्त चमत्कारमय है। विहारीलाल के काव्य के सबन्ध मे इतना ही कह
पर्याप्त होगा कि इन्होंने बाल्यकाल मे रवीन्द्रनाथ को काव्य चर्चा की अ
प्रेरित किया था। बालक रवीन्द्रनाथ विहारीलाल के काव्य के छन्द और भ
के अवलबन से काव्य रचना मे प्रवृत्त हुए।

सुरेन्द्रनाथ मजुमदार के निवध और कविताएँ "विविधार्थसग्रह" इत्या
अनेक पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुआ करती थी। अनेक छोटीमोटी कविता
के अतिरिक्त इन्होंने एक नाटक और चार पाँच काव्यों की रचना की।
सब मे श्रेष्ठ महिला काव्य है। यह काव्य तीन अशों मे विभक्त है—उपहा

ता और जाया । भगिनी नामक चतुर्थ अंश को भी कवि ने आरभ किया
, किन्तु थोड़ी पक्तियों से आगे लिखने का सुयोग उनको नहीं मिला ।
हिला काव्य की रचना १२७८ ब० स० मे आरभ हुई इनका प्रकाशन कवि
। मृत्यु के पश्चात् हुआ । सुरेन्द्रनाथ का प्रथम बड़ा काव्य "सवितासुदर्शन"
२७५ मे प्रकाशित हुआ इनके और विहारीलाल के काव्य मे एक साधर्म्य
, दोनो ही के काव्य मे वर्णनीय वाह्यवस्तु की अपेक्षा कवि के चित्त मे
सने जिस अनुभूति अथवा प्रतिक्रिया को जगाया है उसी का मूल्य अधिक
। यह हृदयावेग विहारीलाल के काव्य मे जितना वाह्यवस्तु निरपेक्ष है
तना सुरेन्द्रनाथ के काव्य मे नहीं है । किन्तु पदलालित्य और भाषा के
ष्ठव मे सुरेन्द्रनाथ की रचना विहारीलाल की अपेक्षा उत्कृष्ट है यह मानना
ड़गा । विहारीलाल के काव्य मे विदेशी कवियो का प्रभाव नितान्त क्षीण,
, पर सुरेन्द्रनाथ के काव्य के विषय मे यह बात पूर्णतया ठीक नहीं उतरती ।

हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय ने काव्य रचना मे पुरातनवर्णनात्मक रीति का
अनुसरण किया है । हेमचन्द्र का जन्म व० स० १२४५ अर्थात् १८३८ ई०
वैशाख को हुआ और मृत्यु वं० स० १३१० अर्थात् १९०३ ई० १० ज्येष्ठ
। । इनका जन्म स्थान हुगली जिले के राजबलहाट के समीप गुलटिया
ाँव था । कवि कलकत्ते के हाईकोर्ट मे वकालत करते थे ।अन्तिम दिनों मे
ह दृष्टि-हीन होकर दु.खी रहे ।

विहारीलाल द्वारा सम्पादित अबोधबन्धु में हेमचन्द्र कविता लिखा करते
। वगदर्शन मे भी इनकी बहुत कविता प्रकाशित हुई है । १८६१ मे
नका प्रथम काव्य चिन्तातरंगिणी प्रकाशित हुआ । इसके पश्चात् क्रमश.
नलिनीवसत" नाटक (१८६८), 'कवितावली" प्रथम भाग (१८७०),
वृत्रसहार" महाकाव्य प्रथम खड (१८७५ द्वितीय खड १८७७), "कविता-
ली" द्वितीय खड, "छायामयी", "दशमहाविद्या," "रोमियोजलियट"
ाटक, एव 'चित्तविकाश" प्रकाशित हुए । दोनों नाटक क्रमश. शेक्सपियर
; टेम्पेस्ट और रोमियो जूलियट के आधार पर लिखे गये हैं । इटैलियन
वि दान्ते की "दिविना कोमेडिया" के भाव का अवलबन लेकर छायामय

लिखी गयी। वृत्रसंहार की रचना के मूल में मेघनाद वध की प्रेरणा थी। वीर रस यद्यपि सर्वत्र नहीं जम सका है, तथापि यह बात सब को कहनी पड़ेगी कि वृत्रसंहार बंगला साहित्य का एक उत्कृष्ट काव्य है। हेमचन्द्र छन्दरचना में विलक्षण निपुणता रखते थे। बोलचाल की भाषा में छोटे छोटे छन्दों में सामयिक घटनाओं का अवलम्बन लेकर कवि ने अत्यन्त सरस और मनोहारिणी कविताओं की रचना की थी। यह रचनाएँ ईश्वरचन्द्र गुप्त की रचना का स्मरण करा देती हैं। इन सबके ऊपर, हेमचन्द्र की रचना में स्वदेशप्रीति एवं स्वाधीनता की कामना जितने निष्कपट भाव से स्फुटित हुई है, इतनी अन्य किसी पूर्ववर्ती कवि की रचना में नहीं मिलती। हेमचन्द्र के भाई ईश्वरचन्द्र (१२६२-१३०४ ब० सं०) भी सुकवि थे। इनका योगेश (१२८७ काव्य निन्दनीय नहीं है।

हेमचन्द्र के अभ्युदय के अल्पकाल पश्चात् नवीनचन्द्र का (१८४७-१९०६) आविर्भाव घटित हुआ। इनका जन्मस्थान चटगाँव जिले के नयापाड़ा गाँव में था। यह डिप्टी कलक्टरी करते थे। नवीनचन्द्र ने अनेक उत्कृष्ट काव्यों की रचना की है' उनमें "पलासी का युद्ध"(१२८२ ब० सं०) एवं 'रैवतक", कुरुक्षेत्र और प्रभास श्रेष्ठ हैं। अन्तिम तीन काव्य वास्तव में एक विराट काव्य के तीन स्वतंत्र अंश मात्र हैं। इन तीन काव्यों में कवि ने अपनी अपूर्व कल्पना से श्रीकृष्णचरित्र को नवीन भाव से व्यक्त किया है, कवि के मत में आर्य अनार्य संस्कृति के संघर्ष के परिणाम स्वरूप ही कुरुक्षेत्र का युद्ध घटित हुआ एवं आर्य तथा अनार्य सम्प्रदाय को मिला कर श्रीकृष्ण ने प्रेम राज्य की संस्थापना की। नवीनचन्द्र के अन्य काव्य ग्रंथ "अवकाशरंजनी" दो खंड, "क्लिओपेट्रा',, "अमिताभ", "अमृताभ" और खीष्ट हैं। नवीनचन्द्र का कवित्व स्थान स्थान पर अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है, पर वह इस चमत्कारित्व की सर्वत्र रक्षा नहीं कर सके हैं। इस कारण काव्य में सुगठन न होने के कारण नवीनचन्द्र के काव्य का ठीक कठिन हो गया है। नवीनचन्द्र ने गद्यरचना के कार्य में भी हाथ प्रकार से विचार करना लगाया

ा, इस जाति की रचना मे उनकी आत्मकथा "आमार जीवन" सुपाठ्य ग्रथ । कवि ने भानुमती नामक एक उपन्यास की भी रचना की थी।

१६वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मधुसूदन और हेमचन्द्र के अनुकरण र बहुतेरे व्यक्ति काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे। इनमे से किसी किसी ने यिक प्रसिद्धि भी पायी थी। इनमे से निम्नलिखित कवि उल्लेख योग्य हैं —"मित्रविलाप" (१८६६) के रचयिता राजकृष्ण मुखोपाध्याय, "पुण्यमाला नेर्वासितेर विलाप" (१६२५ सवत्), "हिमाद्रि कुसुम" इत्यादि के रचयिता शवनाथ शास्त्री, "राजतपस्विनी" (१२६३ ब० स०) के रचयिता रचन्द्रघोष, कविकहानी' (१८७६) के रचयिता दीनेशचरण वसु, 'आर्यमगीत" (द्रौपदी निग्रह) काव्य (१२८६) के रचयिता नवीनचन्द्र ुखोपाध्याय, "वैराग्यविपिनविहार"काव्य के रचयिता रंगलाल मुखोपाध्याय, ्व "हेलेना" काव्य (१७६६ शकाब्द), "मित्रकाव्य", "भारतमगल" त्यादि के रचयिता अनन्दमित्र एव "मेनका" (१६३१ सवत्) 'ललिता ुन्दरी"इत्यादि के रचयिता अधरलाल सेन।

१६वीं शताब्दी के अन्त की ओर इसी समय कुछ महिला कवियों का ग्राविर्भाव हुआ। इनमे से "अश्रुकण" (१२९४),"आभाप (१२६७) त्यादि काव्यो की रचयित्री गिरीन्द्रमोहिनी दासी की रचनाओं मे शक्तिमत्ता ा परिचय मिलता है।

(३५)

गद्य में बंकिमचन्द्र और उनका युग

नैहाटी के निकट कॉटालपाड़ा गॉव मे १२४५ ब० स० के १३ आषाढ़ ो अर्थात् १८३८ ई० की २६ जून को बंकिमचन्द्र का जन्म हुआ। वह ार भाई थे—श्यामचरण, सजीवचन्द्र, बंकिमचन्द्र और पूर्णचन्द्र। इनके पेता यादवचन्द्र डिप्टी कलक्टर थे। बंकिमचन्द्र ने प्रधानत हुगली कालेज शिक्षा पाई। १८५६ ई० मे इन्होंने हुगली कालेज से सीनियर स्कालरशिप ीक्षा दी एव सर्वोच्च पास हुए। इसके पश्चात् वह कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी

कालेज के क़ानून विभाग में भर्ती हुए। यही से उन्होने १८५७ ई० एंट्रेस और १८५८ मे बी० ए० परीक्षा पास की। बी० ए० परीक्षा मे उ साथ यदुनाथ वसु भी उत्तीर्ण हुए थे। यही कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रथम बी० ए० पास ग्रेजुएट थे। १८५८ में बकिमचन्द्र को डिप्टी कलक मिली एव ११ वर्ष के पश्चात् १८६९ में उन्होंने बी० एल० परीक्षा दी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।

हुगली कालेज मे पढ़ने के समय ही से बकिमचन्द्र की साहित्य-साध आरभ हुई। आरभ मे वह ईश्वरचन्द्र गुप्त की शैली पर कविता लिखते थे, उन कई कविताएँ १८५२ और १८५३ ई० में "सवाद-प्रभाकर" में प्रकाशित हु इनकी प्रथम पुस्तक "ललिता" और "मानस" है। यह दोनो स्वतत्र क १८५६ ई० मे एकत्र प्रकाशित हुए। कवितारचना मे विशेष सफलता पाने के कारण बकिमचन्द्र ने काव्य-साधना छोड दी, और कुछ दिनो लिये साहित्यचर्चा भी बन्द रखी। इसके पश्चात् उन्होंने उपन्यास रचना हाथ लगाया। उस समय के शिक्षित बगालियों के समान पहले उन्होंने भ हाथ अग्रेजी पर आजमाया। १८५९-६० में उन्होंने "राजमोहन्स वा नामक एक उपन्यास की रचना की। पीछे यह उपन्यास "इडियन फी नामक साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। अग्रेजी पर कितना ही अधि क्या न हो, बगालियों के मन के भाव बगला मे ही भली प्रकार व्यक्ति पाते हैं। विदेशी भाषा में सुन्दर रचना होने पर प्रशसा पाई जा स है किन्तु श्रेष्ठ-साहित्य की रचना नही हो सकती। अग्रेजी उपन्यास लि बकिमचन्द्र तृप्ति तो नहीं पा सके, किन्तु उन्होंने यह समझ लिया कि दिनो बाद उनकी प्रतिभा ने अपना मार्ग खोज लिया। तब बकिमचन बगला मे उपन्यास लिखना आरंभ किया। १८६५ ई० में "दुर्गेशनन्दि के फल स्वरूप बगाली पाठकों के सम्मुख अकस्मात् एक अपूर्व रस उन्मुक्त हो गया। इसके पश्चात् १८६६ ई० में "कपालकुडला" एव '
[illegible] अर्थात् १८७२ ई

ंकिम के "वगदर्शन ने वगालियों का हृदय एकदम लूट लिया। ंगदर्शन के प्रथम चार खडों का ही सम्पादन वंकिमचन्द्र ने किया,इसके पश्चात् सके सम्पादन का भार उनके मॅझले वडे भाई संजीवचन्द्र के ऊपर पड़ा। "वंग र्शन" के पृष्ठ मे वंकिमचन्द्र की निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई—"विषवृक्ष" (१२७६) "इन्दिरा" (इसी के चैत्र में), "युगलागुलीय" (१२८० वैशाख) 'साम्य"१२८०—८१),"चन्द्रशेखर" (१२७६),"कमलाकान्तेरदफ्तर (आरभ भाद्र १२८०),"कृष्णचरित्र" (-१२८१ से) ('रजनी" (१२८१-८२), 'राधारानी" (कार्तिक-अगहन १२८२), 'कृष्ण कान्तेर 'विल" (१२८२-८४), राजसिंह" (१२८४-८५), "मुचिराम जीवन चरित" (१२८७) "आनन्दमठ" (१२८७-८६),"देवी चौधुरानी" (आरम पौष १२८६, पुस्तकाकार सम्पूर्ण), 'नव-जीवन पत्रिका" मे "धर्मतत्व" (१८८७ ई० मे एवं "प्रचार" पत्रिका मे 'सीताराम" (१८८७ ई०),प्रकाशित हुआ। यही वंकिम का अन्तिम उपन्यास है। 'वगदर्शन"में प्रकाशित वकिम की अन्य रचनाएँ,"लोकरहस्य","विविधप्रबंध" (दो भाग) इत्यादि के रूप मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। १३०० व० स० अर्थात् १८९४ई० मे चैत्र३० को वकिमचन्द्र का परलोक वास हुआ।

अंग्रेजी रोमास का अनुसरण करते हुए वंकिमचन्द्र ने वंगला मे जिस उपन्यास रचना के युग का प्रवर्तन किया वह आज भी समाप्त नहीं हुआ है। अंग्रेजी का अनुसरण करने पर भी वकिम के उपन्यास पूर्णतया देशी वस्तु हैं, इनके पात्रपात्री, देशकाल, घटनासंगल सभी देशी हैं। गल्प सुनने की वासना मनुष्य मे मज्जागत है, इतने दिनो तक वगाली लोग, 'विद्यासुन्दर" की कहानी, "अलिफलैला", "हातिमताई" इत्यादि पढकर गल्पपिपासा को किसी न किसी प्रकार मिटाते रहे। वंकिम के उपन्यासों ने वंगालियों को अपने घर के आदमी अपूर्व भाव मे रूपान्तरित होकर रोमांटिक स्वप्नालोक मे दिखलाई दिया। वंगालियों की साहित्यपिपासा चरितार्थ हुई। इसी से वगाली पाठकों के भक्तहृदय सिंहासन पर वंकिम अक्षयभाव से प्रतिष्ठित हो गये। आज तक कोई भी अन्य लेखक यहां तक कि रवीन्द्रनाथ भी, वंगाली पाठकों के हृदयराज्य पर ऐसा अखंड अधिकार प्राप्त नहीं कर सके।

लाभ की। इसके साथ ही साथ "आर्यदर्शन" पत्रिका के सपादक योगेन्द्र विद्याभूषण का नाम उल्लेख के योग्य है।

इस युग की काव्यरचना के विषय में पहले ही कहा जा चुका नाटक-रचना करने वालों में तीन नाम समधिक उल्लेखनीय हैं—ज्योतिरि नाथ ठाकुर, गिरिशचन्द्र घोष, एव अमृतलाल वसु। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठ के चौथे पुत्र, रवीन्द्र के बड़े भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ एक सुसाहित्यिक संगीत और नाटक रचना में अभिनय में, सगीत विद्या में इनको असाध दक्षता प्राप्त थी। काव्य और सगीत रचना मे एव सुरसृष्टि में रवीन्द्रना न्हीं से सार्थक प्रेरणा और उत्साह पाया था। ज्योतिरिन्द्रनाथ ने उत्कृष्ट नाटकों और प्रहसनों की रचना की, उनमें से कितने ही सस्कृत अनुवाद हैं। इनकी प्रथम नाट्य रचना "किंचित् जलयोग" १८७३ ई प्रकाशित हुई, दूसरे वर्ष 'पुरुविक्रम" नाटक प्रकाशित हुआ। ज्योति ठाकुर के रचे हुए नाटकों का अभिनय उस समय विशेष समादृत गिरिशचन्द्र और अमृतलाल के विषय में आगे चल कर लिखा जाएगा

१९वीं शताब्दी के आरभ से ही जोडासाको का ठाकुरभवन शिक्षा एव ऐश्वर्य तथा वदान्यता मे कलकत्ते के सभ्रान्त समाज मे शीर्षस्थ था। ऐश्वर्य एव भोगविलास के आडम्बर के कारण इस भवन के प्रति द्वारकानाथ ठाकुर 'प्रिंस' नाम से विख्यात थे। यह दो बार १८४२ १८४५ मे विलायत गये थे। आगामी वर्ष मे विलायत मे ही इनकी मृ गई। इनके ज्येष्ठ पुत्र देवेन्द्रनाथ असाधारण पुरुष थे। उनकी आध्यात्मि जितनी गहरी थी, सासारिक बुद्धि दृढचित्तता एव दूरदर्शिता भी उत प्रबल थी। देशवासियों ने श्रद्धापूर्वक उनको महर्षि नाम दिया था। यह अत्युक्ति नहीं होगा कि देवेन्द्रनाथ उस समय के ब्राह्मसमाज के मूल थे। समाज सुधार के कार्य मे इनका प्रबल आग्रह और उद्योग था, इनो कारण प्राचीन आचार व्यवहार मे जो कुछ भला था उसको परि करने का वह प्रस्तुत नहीं थे। इसी कारण अत्यन्त प्रगतिशील ब्राह्मलो स्वतन्त्र होकर साधारण ब्राह्मसमाज गठित किया, तब देवेन्द्रनाथ का स

आदि ब्राह्मसमाज के नाम से परिचित हुआ। देवेन्द्रनाथ ने बंगला-गद्यरचना में विशेष दक्षता दिखलाई। "तत्वबोधिनी" पत्रिका का प्रवर्तन (ब १२५०) इनकी कीर्ति है।

देवेन्द्रनाथ के अनेक पुत्र और कन्याएँ हुईं। यह सभी प्रतिभासम्पन्न थे। ज्येष्ठपुत्र द्विजेन्द्रनाथ एक साथ ही कवि और दार्शनिक थे। इनका 'स्वप्न-प्रयाण" काव्य (१७९७ शकाब्द अर्थात् १७७५-७६ ई० खृष्टाब्द) बंगला-साहित्य में अपूर्व है। उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों को सरल बंगला में व्याख्या करने में द्विजेन्द्रनाथ अद्वितीय थे। देवेन्द्रनाथ के मँझले पुत्र सत्येन्द्रनाथ भारतियों में प्रथम सिविलियन थे। यह भी सुसाहित्यिक थे। पंचम पुत्र ज्योतिरेन्द्रनाथ की चर्चा पहले की ही जा चुकी है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। नाटक रचना से लेकर चित्रांकन प्रभृति तक इन्होंने नाना विषयों में दक्षता प्रदर्शित की। रवीन्द्रनाथ की संगीत और साहित्य की चर्चा के मूल में इन्हीं की प्रेरणा थी। देवेन्द्रनाथ की एक कन्या स्वर्णकुमारी देवी बंगला महिला साहित्यिकों में सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने अनेक सुन्दर उपन्यास गल्प नाट्यकथा इत्यादि की रचना की। दीर्घकाल तक 'भारतीपत्रिका' का योग्यतापूर्वक संपादन किया। सबसे छोटे पुत्र रवीन्द्रनाथ के समान इतनी बड़ी साहित्यिक प्रतिभा आज तक संसार में कम ही आविर्भूत हुई है। देवेन्द्रनाथ के पौत्रों में सुधीन्द्रनाथ और बलेन्द्रनाथ सुसाहित्यिक थे। यदि अल्पवयस में मृत्यु न हो जाती तो बलेन्द्रनाथ की लेखनी के द्वारा बंगला साहित्य की ऐश्वर्य वृद्धि होती। प्रपौत्र दीनेन्द्रनाथ उच्चश्रेणी के संगीतज्ञ और स्वरकार थे। देवेन्द्रनाथ के भाई के पौत्र गगनेन्द्रनाथ अवनीन्द्रनाथ ने चित्रकला में नवीनयुग की अवतारणा की है। आधुनिक भारतीय चित्रकला की शैली के प्रवर्तक और आदि गुरु अवनीन्द्रनाथ ने बंगला-गद्य में एक नूतन शैली की सृष्टि की। परिणाम यह हुआ कि ठाकुरभवन के केन्द्र से १९वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बंगाल देश के साहित्य संगीत एवं चित्रकला नवीन प्रेरणा से विचित्र भाव से पल्लवित हो उठे। ठाकुर भवन

की प्रतिभा ने आधुनिक भारत की जातीय-संस्कृत और सौन्दर्यबोध के उद्बोधन में अपरिमीम सहायता की है।

(३६)

बंगला नाटक का मध्य युग : गिरिशचन्द्र, अमृतलाल और उनके सहयोगी

बंगला नाट्यसाहित्य में गिरिशचन्द्र (१८४४-१९११) का अभ्युदय उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुआ। इनके समान उर्वर लेखनी चलाने में बंगला-साहित्य में बहुत ही कम लेखक समर्थ हुए हैं। सब मिलाकर यह कोई अस्सी नाटकों की रचना कर गये हैं।

गिरिशचन्द्र बंगला साहित्य में श्रेष्ठ सफल नाटककार हैं। इनके नाटक संस्कृत अथवा अंग्रेजी नाटकों के अनुकरण अथवा अनुसरण मात्र नहीं हैं। बंगाली जाति की प्रवृत्ति को ओर लक्ष्य रखकर यह स्वतन्त्र प्रकार के साहित्य की सृष्टि कर गये हैं। बंगालियों का मन चिरकाल से ही रामायण, महाभारत एवं पौराणिक कथाओं के रस में परमतृप्ति लाभ करता आ रहा है। केवल बंगाल का ही मन क्या, निखिल भारतवर्ष की अन्तरात्मा युग युगान्तर से पुराण कथाओं के आदर्श चरित्रों की छविप्रतिच्छवि काव्य और नाटक में से प्रतिबिम्बित करती आ रही है। गिरिशचन्द्र के पौराणिक नाट्यग्रंथों में पुराणों में वर्णित अनेक आदर्शचरित्र नूतनभाव से उपस्थित किये गये हैं।

केवल पौराणिक आख्यानों को ही नहीं, गिरिशचन्द्र कतिपय गृहस्थ-संबंधी चित्रों और वीर रसाश्रित ऐतिहासिक उपाख्यानों को अनन्यसाधारण नाट्यरूप दे गये हैं। इनके श्रेष्ठ नाटकों में अन्यतम हैं—"जना", "पाण्डवेर अज्ञातवास" (पाडवों का अज्ञातवास), "चैतन्यलीला", "विल्वमंगल", "प्रफुल्ल" इत्यादि।

बंगालियों का मन भक्ति और करुणरस से जितनी सरलता से आर्द्र होता है, ऐसा अन्य किसी और रस में नहीं होता। इन दोनों रसों की सृष्टि

में गिरिशचन्द्र विशेष निपुणता दिखा गये हैं। उनके अस्सी नाटक नाटिका और गीतिनाट्यों में सात आठ सौ से भी ऊपर पात्रों की सृष्टि हुई है। किन्तु विस्मय का विषय तो यह है कि इतने विभिन्न चरित्रों में प्राय. अनेकों का अपना विशेषत्व और स्वातंत्र्य उज्ज्वल रूप में स्फुटित हो उठा है। गिरिशचन्द्र मध्यम श्रेणी के बंगाली गृहस्थ की सन्तान थे, उनको ग्रीस देश के ट्रैजेडी लेखकों की अथवा शेक्सपियर की कोटि का नाट्यकार बतलाना समीचीन नहीं है। उनकी जीवन की अभिज्ञता और परिस्थित बहुत संकीर्ण थी।

हमारे देश के नाट्यकार को कवि नहीं कहा जाता, अतएव साधारण पाठक गिरिशचन्द्र को कवि के रूप में नहीं जानते। उन्होंने कुछ विशेष काव्यरचना की भी नहीं है। लेकिन गान रचना वह निरन्तर करते रहे थे। उनके अनेक गान चमत्कारपूर्ण हैं।

बंगाल में साधारण नाट्यशाला की (अर्थात् ऐसी रंगशाला की जो कि निःशुल्क अथवा मित्रमंडली का थियेटर न हो) स्थापना में बंगला के दो प्रतिभाशाली नाट्यकारों ने सहयोग किया। यह दोनों सज्जन गिरिशचन्द्र और अमृतलाल बसु (१८५३-१९२९) हैं। अमृतलाल भी एक साथ सुदक्ष अभिनेता और यशस्वी नाट्यकार थे। रंगरचना में अमृतलाल का जोड़ नहीं है। इनके नाट्यग्रंथ प्राय छोटे और हास्यबहुल हैं। गद्य व्यंग रचना में, गल्प तथा नक्शा लिखने में अमृतलाल ने विशेष दक्षता प्रदर्शित की है। "विवाह", 'विभ्राट्' "तरुबाला" इत्यादि ग्रन्थ अमृतलाल की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

इस युग के नाट्यकारों में गिरिशचन्द्र और अमृतलाल के उपरान्त विहारीलाल भट्टाचार्य एवं राजकृष्ण राय का नाम उल्लेखनीय है। राजकृष्ण ने अविराम ग्रन्थ-रचना की—काव्य, उपन्यास, नाटक सभी कुछ लिखा। इनके कई एक नाटक रंगमंच पर विशेष सफलता के साथ खेले गये हैं।

परवर्ती नाट्कारों में दो विशेष उल्लेख योग्य हैं। क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद (मृत्यु १३३४ ब० सं०) ने अनेकों उत्कृष्ट नाटकों और उपन्यासों की रचना

। है। इनका गीतिनाट्य'अलीबाबा' बगला रगमच पर नित्य नूतन बना
ा है। द्विजेन्द्रलाल राय ने कवि और नाट्यकार के रूप में प्रसिद्ध पाई है।
भिनय मे ठीक उतरने पर भी इनके नाटक, नाटक की दृष्टि से प्राणहीन
। कवि एव नाटककार के रूप मे न भी सही, हास्यगान के रचयिता के
प मे द्विजेन्द्रलाल बगला साहित्य मे अमर रहेंगे।

(३७)

रवीन्द्रनाथ

१२६८ व० स० अर्थात् १८६१ ई० मे २५ वैसाख को कलकत्ते के जोडासाँको में श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टाकुर का जन्म हुआ। बाल्यकाल मे घर पर शिक्षकों से एव तत्पश्चात स्वय पढ सुनकर यह बगला, अंग्रेज़ी एव सस्कृत भाषाओं मे व्युत्पन्न हुए। यह कहना ही पडेगा कि विद्यालय में पढने का अवकाश उनको नहीं मिला। सत्रह वर्ष की अवस्था मे विलायत जाकर वहाँ अल्पकाल के लिये लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज मे कुछ अध्ययन किया। बगला, अंग्रेजी एव सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने विज्ञान और भाषा-विज्ञान शास्त्र की भी चर्चा की। बाल्यकाल से ही इन्होंने साहित्य साधना मे हाथ लगाया है अपनी साहित्य चर्चा के आरभ की कथा आपने अपने "जीवन-स्मृत" नामक ग्रन्थ मे अनवद्य-भाव से वर्णन की है।

बारह तेरह वर्ष की अवस्था ही मे रवीन्द्रनाथ ने गद्यपद्य-रचना आरभ कर दी थी। इनका प्रथम काव्यग्रन्थ 'वनफुल' १२८२ व० स० मे "ज्ञानाकुर पत्रिका" मे एव १२८६ मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। उनके प्रथम गद्य-प्रबन्ध (समालोचना)--'भुवनमनमोहिनी-प्रतिभा", "अवसरसरोजिनी" और "दु खसगिनी"—"ज्ञानाकुर,' मे १२८३ सवत मे प्रकाशित हुए। रवीन्द्रनाथ का द्वितीय काव्य "कवि काहिनी"(=कविकहानी) वनफुल के पश्चात् लिखे जाने पर भी १२८६ व० स० मे वनफुल से पहले ही प्रकाशित हो गया। १२८४ व०स के श्रावण से द्विजेन्द्रनाथ ने "भारती" पत्रिका का प्रकाशन आरभ किया। "भारती,' पत्रिका के मञ्च पर तो कवि

जमकर बैठ गये। इसमें उनकी बहुत सी गद्यपद्य-रचना प्रकाशित होने लगी। सारी रचनाओं का परिचय देने के लिये तो स्वतंत्र पुस्तक की रचना करनी ड़ेगी, अतएव आगे प्रधान काव्य एव अन्य-रचनाओं की चर्चा की जायेगी। 'भारती" पत्रिका के प्रथम वर्ष मे रविन्द्रनाथ ने "विद्यापति", "गोविन्ददास" इत्यादि वैष्णव कवियों के अनुकरण पर कुछ 'ब्रजबोली' के पदों की रचना करके उनको भानुसिंह ठाकुर की पदावली' के नाम से प्रकाशित किया। बाल्यकाल की रचना होने पर भी इसके अनेक पद चमत्कारपूर्ण हैं, बाल्यकाल ी रचना के प्रति यथेष्ट निर्ममता दिखलाने पर भी कवि भानुसिंह ठाकुर की छ कविताओं के प्रति उदासीन नहीं हो सके हैं। यही रवीन्द्रनाथ की प्रथम ात-कविता है। बंगाला-साहित्य का मूल स्वर, जो जयदेव से आरभ होकर ष्णवपदावली मे होता हुआ पुरातन काल से अब तक चला आया है, एव समने रवीन्द्रनाथ की रचना मे नूतनप्रेरणा और अपूर्व रूप प्राप्त किया है, ानुसिह ठाकुर की पदावली मे उसी के आगमन की सूचना प्रतिध्वनित हो उठी । इसके पश्चात् रवीन्द्रनाथ का प्रथम गीति-नाट्य वाल्मीकि-प्रतिभा रचा ाया। १८८२ ई० मे सध्यासगीत प्रकाशित हुआ, इस काव्य की रचना मे वीन्द्रनाथ की अपनी विशिष्टता प्रथम बार दिखलाई दी। इसके उपरात कवि े आख्यायिका काव्य की रचना छोड दी। तरुण कवि की अपरिपक्व लेखनी की सृष्टि होते हुए भी इस काव्य के प्रति समझदार साहित्यिकों की दृष्टि आकर्षित होने मे देर न लगी; कवि को बंकिमचन्द्र से बधाई मिली। प्रथम और द्वितीय वर्ष की भारती मे (१२८४-८५) मे रवीन्द्रनाथ का प्रथम उपन्यास "करुणा" प्रकाशित हुआ। अत्यन्त कच्ची रचना होने के कारण यह दूसरी बार नहीं छपा। द्वितीय उपन्यास "बौठाकुरानीरहाट' (बहू ठकुरानी की हाट) की रचना के समय गद्यरचना मे कवि का हाथ पक्का हो गया। "बौठाकुरानीरहाट १२९० बं स० मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इसी बीच मे काव्य-रचना मे कवि की प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी। "कडि ओ कोमल' काव्य(१२९३) मे हृदयावेग की अस्फुटता जाती रही, भाव सुनिर्दिष्ट और भाषा तथा छन्द सयत हो गये। इसके पश्चात् "मानसी" काव्य मे

(१२६७) कवि की प्रतिभा का स्फुट विकास हो गया । हृदयावेग की वाष्पाकुलता कट जाने पर भाव-सघन और वाग्भगी परिमित हो गयी । उस समय कवि का पूर्ण यौवन् था, इसीलिये प्रेम की कविताओं ने "मानसी" में विशेष स्थान पाया है । इसके पश्चात् "चित्रागदा" नामक नाट्यकाव्य प्रकाशित हुआ, इसका मूलस्वर "नारी का प्रेम" और उसकी चरितार्थता है । इसके बाद प्रकाशित हुई ' 'सोनारतरी" (सोने की नाव), इसमे १२६८ के अन्त से लेकर १३०० व० स० के मध्यभाग तक की रची हुई कविताएँ सगृहीत हैं । १२६८ वि० स ० के महीने से कवि ने अपने भतीजे सुधीन्द्रनाथ की सपादकता में "साधना" नामक पत्रिका प्रकाशित की । रवीन्द्र की प्रतिभा उस समय मध्याह्न गगन मे थी, कविता, गान गल्प, प्रबन्ध सभी क्षेत्रों मे उस समय रवीन्द्र प्रतिभा रचना की प्रचुरता से अजस्र धारा में बहने लगी, "साधना" के पन्ने पन्ने पर रवीन्द्रनाथ "गद्यपद्य की जोडी हाँकने लगे ।"

१२६६ व० स० मे रवीन्द्रनाथ ने आधुनिक बगला-साहित्य मे छोटी गल्पो की सृष्टि करके एक नवीन एव प्रधान धारा की सृष्टि की, यह छोटी गल्पो की धारा आज कल के बगला साहित्य में प्रबल वेग से बह रही है, एव अनेक प्रतिभावान लेखको ने छोटी गल्प के मध्यम मे प्रथम श्रेणी के साहित्य की सृष्टि की है और कर रहे हैं । रवीन्द्रनाथ के छोटी गल्पों की रचना मे हाथ लगाने से पहले, बकिमचन्द्र, सजीवचन्द्र इत्यादि दो एक साहित्यिकों ने गल्पे लिखी तो थी पर वह क्षुद्र उपन्यास अथवा 'बड़ी गल्प' की जाति की थी, छोटी गल्प—जिसको अग्रेजी में 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं—नहीं था । बगला मे छोटी गल्पो का चलन रवीन्द्रनाथ की ही कीर्ति है, और उनकी छोटी गल्पे आज भी बगला-साहित्य के क्षेत्र मे अपराजित हैं । सच तो यह है कि रवीन्द्रनाथ ससार भर के श्रेष्ठ गल्प लेखकों मे से एक हैं । रवीन्द्रनाथ की पहली छ छोटी कहानियाँ "हितवादी' पत्रिका मे प्रकाशित हुई । इसके पश्चात् "साधना' पत्रिका के प्रतिष्ठित होने पर उसमे प्रत्येक मास मे एक छोटी कहानी प्रकाशित होने लगी । चार वर्ष पीछे "साधना' पत्रिका के प्रतिष्ठित होने पर उनमे प्रत्येक मास मे एक छोटी कहानी प्रकाशित होने

लगीं। चार वर्ष पीछे 'साधना' के उठ जाने पर 'भारती' पत्रिका ने और तदुपरान्त "बंगदर्शन" (नवीन) में एवं 'प्रवासी' पत्रिका में और इसके भी पश्चात् "सबुजपत्र" में रवीन्द्रनाथ की बहुत सी छोटी गल्पें प्रकाशित होती रही हैं।

"सोनारतरी" के समय से रवीन्द्रनाथ के काव्य में बुद्धिमूलक आध्यात्मिक भाव की सूचना मिली। कवि की काव्यप्रेरणा के मूल जो विराज रहे हैं, वही मानो कवि के जन्मजन्मान्तर में उसका मार्ग दिखलाते लिये जा रहे हैं, एवं वही कवि की सकल कामनाओं के मूल में रहते हैं, इस प्रकार का एक भाव "सोनारतरी" की कुछ कविताओं में प्रथमवार कहा गया। "चित्रा" "चैतालि", "कल्पना", प्रभृति परवर्ती काव्यों में यही भाव स्फुटतर रूप को प्राप्त हो गया है। "मानसी" से लेकर कल्पना तक का युग रवीन्द्रनाथ के शिल्पनैपुण्य का युग कहा जा सकता है। छन्दों की निपुणता में, अलंकारों के ऐश्वर्य से, भावों के समावेश में इस युग की अनेक कविताएँ बेजोड़ हैं। गद्य में भी हम यही देखते हैं इस समय की लिखी गल्पों और प्रबन्धों में रवीन्द्र ने विचित्र प्रकार से भाषा के इन्द्रजाल की सृष्टि की है। गद्य भी पद्य के समान (अथवा उससे भी अधिक) सुषमायुक्त और छन्दोमय हो गया है।

'क्षणिक' काव्य में (१६००) में रवीन्द्रनाथ ने स्वर बदल दिया। भाषा और अलंकार का आडम्बर एक दम कम हो गया कवि ने अपने मन में जो एक अपूर्व मुक्ति के आनन्द की उपलब्धि की थी, उसी ने स्वाभाविक भाषा और हलके छन्दों में अनवद्य रूप से इस भाव की आडम्बरहीन छोटी छोटी कविताओं में प्रकाश पाया। इस काव्य के अन्त में जो दो कविताएँ हैं उनमें कवि की आध्यात्मिक व्याकुलता ने प्रथम बार अभिव्यक्ति पाई है। आध्यात्मिक-भाव 'सोनारतरी' के युग की बुद्धिमूलक आध्यात्मिकता नहीं है। इस भाव के मूल में भक्ति और ईश्वर प्रेम है। पिछले समय के अधिकांश काव्यों में विशेष कर 'गीतांजलि' में, कविता और गानों में यह भक्तिभाव विशेष प्रकार से प्रगाढ़ होकर प्रकाशित हुआ है। "क्षणिका" का आध्यात्मिक

भाव "खेया' (१९०६) काव्य मे और भी सुपरिस्फुट हो उठा है पर काव्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ उत्कृष्टतर नही है। इसके पश्चात् आती है 'गीताञ्जलि' (१९१०)। रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ काव्य न होते हुए भी अग्रेजी मे अनुवादित होकर नोबल पुरस्कार पाने के कारण यह कवि की अन्य सब रचनाओं से अधिक विख्यात हो गयी है। पृथ्वी की प्राय सभी श्रेष्ठ भाषाओं में गीताञ्जलि का अनुवाद प्रकाशित हुआ है। गीताञ्जलि और गीतिमाल्य के अनेक गानों और कविताओं मे "बाउलगान' का प्रभाव लक्षित होता है।

तृतीय उपन्यास "राजर्षि" की रचना के (१२९३) उपरान्त रवीन्द्रनाथ ने बहुत समय तक उपन्यास रचना मे हाथ नहीं लगाया। १२९८ ब० स० से लेकर १३०८ ब० स० पर्यन्त समय को रवीन्द्रनाथ की छोटी गल्पों और प्रबन्धों का युग कहा जा सकता है। यह प्रधानत 'हितवादी' 'साधना' एवं 'भारती' म प्रकाशित हुए। १३०८ ब० स० मे कवि ने 'नवीन बगदर्शन' के सपादन का भार ग्रहण किया और १३१३ ब० स० मे उसको छोड दिया। इसी समय मे उनका चौथा और पाचवा उपन्यास—"चोखेर बालि"(=आंख की किरकिरी) एव "नौका डूबी '—बगदर्शन मे प्रकाशित हुआ। उपन्यास रचना म इस समय जो शैली चल रही है, अर्थात् सामाजिक सस्कारों का विचार न करके निरपेक्ष भाव से पात्रपात्रियों के मानसलोक का विवर्तन और विश्लेषण उसका सूत्रपात "चोखेरबालि" मे है। छठाँ और श्रेष्ठ उपन्यास 'गोरा पहले 'प्रवासी" पत्रिका मे (१३१४–१५ ब० स०) प्रकाशित हुआ। गोरा की भाषा पहले की अपेक्षा कहीं सरल प्रकार की है। इसके पश्चात् 'प्रवासी ' मे (१३१८ १९) कवि की "जीवन-स्मृति" प्रकाशित हुई। इसकी भाषा गोरा की भाषा से अधिक आडम्बरशून्य और मधुर है। "जीवन-स्मृति रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ गद्यग्रथ है। इसके उपरान्त रवीन्द्रनाथ के काव्य-जीवन का एक नवीन परिच्छेद आरभ हुआ। भक्तिमूलक आध्यात्मिक कविता रचना के साथ साथ वही श्रेणीबद्ध पयार छन्द मे वर्णनात्मक और चिंता-मूलक कविता की रचना करने लगे, मानों बहुत कुछ अश मे "सोनारतरी"

के युग की पुनरावृत्ति घटित हुई। बोलचाल की भाषा की शैली में उन्होंने अनेक गल्पों (जो गल्पसतक में संगृहीत हैं) और एक उपन्यास की भी रचना की। उपन्यास का नाम है "घरे बाहिरे" (घर और बाहर) इस युग की अधिकाश रचनाएँ श्रीयुक्त प्रथमनाथ चौधरी द्वारा सपादित "सबुजपत्र" (१३२१ से) में प्रकाशित हुईं। इसके पश्चात् भी रवीन्द्रनाथ के अनेक उपन्यास अथवा बड़ी बड़ी गल्पें प्रकाशित हुई हैं उनमें "योगायोग" और "शेषेर कविता" उल्लेख योग्य हैं। सबुजपत्र की श्रेष्ठ कविताएँ 'बलाका' काव्य में ग्रन्थित हैं। भावैश्वर्य और शिल्पनैपुण्य में 'बलाका' रवीन्द्रनाथ के श्रेष्ठ काव्यों में से एक है। इस काव्य में बृहत्तर जगत के अथवा विश्व के विवर्तन अथवा गति की रहस्यकथा मूल स्वर में ध्वनित है। इसके उपरान्त जो सब काव्यग्रथ प्रकाशित हुए हैं उनमें "पलातका", "पूरबी", "प्रवाहिनी", "शिशु", "भोलानाथ", "महुया", वनवाणी "परिशेषे", पुनश्च, "वीथिका", "पत्रपुट" इत्यादि उल्लेखनीय हैं। काव्यरचना में रवीन्द्रनाथ अब तक बहुत से नूतन भावों एवं शैलियों की सृष्टि करते आ रहे हैं। अब उन्होंने गद्य-कविता का प्रवर्तन किया है, इस श्रेणी की रचना में तुक और निर्दिष्ट यति विभाग नहीं होता, गद्य को पद्य के समान सम्हाल कर पढ़ना भर बस होता है। इसको ठीक ठीक कविता कहा जा सकता है या नहीं इसमें सन्देह है। कुछ ही समय पूर्व प्रकाशित "प्रान्तिक", "सेंजुति" और "आकाश-दीप" काव्यों से और मासिक पत्रों में प्रकाशित कविताओं से पता चलता है कि रवीन्द्रनाथ गद्य-कविता की रचना के मोह को त्याग चुके हैं।

"सबुजपत्र" के युग के पश्चात् से रवीन्द्रनाथ ने जो उपन्यास और बड़ी कहानियाँ लिखी हैं उनमें से "योगायोग" और "शेषेर कविता" उल्लेखनीय है। "शेषेर कविता" में कवि ने एक नूतन शैली का प्रवर्तन किया है। पद्य के मसाले से मिश्रित इस गद्य रचना को बंगला में चम्पू काव्य कहा जा सकता है। इस काव्य की भाषा और भंगी शाण रखी हुई तलवार के समान उज्ज्वल और मनोहर है।

१९१३ मे "गीताञ्जलि" के अग्रेजी अनुवाद पर रवीन्द्रनाथ का साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला। आज कल साहित्यिको और वैज्ञानिको के प्रा इस पुरस्कार की प्राप्ति सर्वश्रेष्ठ सम्मान है। इससे कुछ पहले कलकत्ता विश्व विद्यालय ने कवि को "डाक्टर आफ लिटरेचर" की पदवी प्रदान की थी इसके पश्चात् देश और विदेश मे—विशेष करके यूरोप मे—इनका जैस अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ है वैसा अन्य किसी देश के किसी कवि के भाग मे घटित नही हुआ। आधुनिक जगत् रवीन्द्रनाथ का केवल श्रेष्ठ कवि के रू मे ही सम्मान नही करता, बल्कि ज्ञानगुरु-आचार्य के रूप मे भी उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करता है।

बगला काव्य मे रवीन्द्रनाथ जो नवीन शोभा लाये है उनसे बगला साहित्य का रूप एक दम बदल गया है। कविता के छन्द और भाव मे गायन के स्वर मे, गद्य के लालित्य मे रवीन्द्रनाथ ने जो ऐश्वर्य प्रकट किय है उसके फलस्वरूप बगला भाषा, साहित्य और सस्कृति आधुनिक भारतवर्ष मे तो श्रेष्ठ हो ही गई है, इसके साथ ही सारी पृथ्वी की श्रेष्ठ भाषाओ, साहित्यो और सस्कृतियो मे से एक गिनी जाने लगी है। यह तो सत्य है कि रवीन्द्रनाथ ने पद्य और गद्य की भाषा मे अग्रेजी मुहावरो का कुछ कुछ प्रवर्तन किया है पर व ऐसी बेमालूम तरह से बगला बन गये है कि अब विदेशी कहकर पहचाने ही नही जा सकते। भाषा की शक्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि होती ही इस प्रकार है। अन्य भाषा के शब्दो और प्रयोगरीति को कुछ कुछ आत्मसात् करके ही भाषा के प्रसार की वृद्धि होती है। सस्कृत-साहित्य का प्रभाव भी रवीन्द्रनाथ की रचनाओ पर कुछ कम नही दिखलाई देता। कालिदास की कविता, विशेष कर, मेघदूत के यह असाधारण भक्त थे। उपनिषदो से लेकर सस्कृत धर्म और काव्य साहित्य से इनका धारावाहिक परिचय था। इसी कारण रवीन्द्रनाथ के काव्य मे भारतीय आध्यात्मिक चिन्तनधारा का प्रवाह टूटा नही है। भारतीय सस्कृति के प्रति इनकी असाधारण श्रद्धा थी। यह श्रद्धा बाहरी पोलीटिकल ढोग के प्रकार की नही थी, किन्तु आन्तरिक उपलब्धि से उत्पन्न भक्ति थी। उस समय तपोवन मे ब्रह्मचारी लोग गुरुगृह मे रह कर

च्चा लाभ करते थे। इसी आदर्श के अनुसार उन्होंने बोलपुर के निकट शान्तिनिकेतन ब्रह्मचर्य विद्यालय की स्थापना की। १९०२ में स्थापित यह विद्यालय अब विश्वभारती के विराट् रूप में परिणत हो गया है। यहाँ स्कूल और कालेज की पढ़ाई प्राच्यभाषा और धर्मविषयक गवेषणा एवं संगीत और चित्रकला का अनुशीलन होता है। इसी से सबद्ध श्रीनिकेतन प्रतिष्ठान में कृषि और उद्भिदजशिल्प की शिक्षा दी जाती है। विश्वभारती इस समय भारतवर्ष में शिक्षा और संस्कृत के अनुशीलन का एक श्रेष्ठ संस्था है।

रवीन्द्र के काव्य की प्रधान विशेषता—अर्थात् वह बात जिसमें पूर्ववर्ती बंगाली कवियों से इनका स्वातन्त्र्य देखा जाता है—निम्नलिखित है। रवीन्द्र के काव्य में, विषयवस्तु—चाहे वह वाह्य प्रकृति हो, चाहे कोई मानव या आइडिया हो, कवि के हृदय में जो प्रतिक्रिया उपस्थित करती है उसी का अनुभूति का प्रकाशन है। पूर्ववर्ती कवियों के काव्य में विषयवस्तु का ही प्रतिबिम्ब प्रतिफलित हुआ है। रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित काव्य धारा में कविचेतना ने विषयवस्तु में ओतप्रोत होकर एक अखण्ड रूप प्राप्त किया है। त्रिकालीन काव्यरीति ने कवि का चित्त विषयवस्तु से बहुत कुछ निरपेक्ष रहकर दर्पण के समान केवल आदर्श को प्रतिबिम्बित करता था। रवीन्द्रनाथ की रीति हीरकखण्ड के समान वस्तु निरपेक्ष होकर अपूर्व वर्णच्छटा विकीरण करती है। रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित काव्यरीति भी इस समय बंगला साहित्य में अप्रतिद्वन्दी भाव से चल रही है। एक दो व्यतिक्रम जो आजकल दिखलाई पड़ते हैं वह बहुत कुछ एक्सपेरीमेंट अथवा कुछ 'नई बात करने' की चेष्टा के समान हैं।

(३८)

रविन्द्रनाथ का समकालीन आधुनिक युगः—शरत चन्द्र

१९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ही रवीन्द्र का प्रभाव बंगला-काव्य में अनुभव होने लगा, बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से यही प्रभाव एक छत्र हो गया है। गद्यशैली पर इस प्रभाव के पड़ने में कुछ विलम्ब हुआ। किन्तु अब

तो रवीन्द्ररीति से बचकर गद्यपद्य-रचना करना बहुत बड़े शक्तिशाली साहित्यिकों के लिये भी असभव है। आजकल कोई कोई अंग्रेजी-काव्य-मक्षिका स्थाने मक्षिका अनुकरण करते हुए कविता रचने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु इस प्रकार की सब कविताओं की भाषा न अंग्रेजी है न बंगला। भाव उद्भट और उत्कट हैं, एव इनको काव्य मे स्थान देने के लिये नवीन प्रकार की काव्यरुचि और साहित्यादर्श का गठन करना पड़ेगा। इस श्रेणी के साहित्यिक इस बात को प्राय भूल गये हैं कि काव्य सृष्टि की प्रेरणा एव भाषा मे उपयुक्त दक्षता न होने पर केवल नवीनता की अवतारणा करने से ही कविता की रचना नहीं हो जाती और इस प्रकार कविख्याति प्राप्त नहीं की जा सकती।

रवीन्द्रयुग की छाया मे पडकर भी जिन्होने काव्य रचना मे थोड़ा मौलिकत्व दिखलाया उनमे मुख्यतम अक्षयकुमार बडाल (१८६५-१९१९) देवेन्द्रनाथ सेन, एव सत्येन्द्रनाथ दत्त (१८८२-१९२२) हैं। अक्षयकुमा मोटे तौर पर प्राचीनपथी कहे जा सकते हैं, इनके काव्य मे बिहारीलाल क प्रभाव विशेष दिखलाई देता है। अक्षय कुमार का प्रथम काव्य ग्रथ "प्रदीप" १२९० ब० स० मे प्रकाशित हुआ। देवेन्द्रनाथ के काव्यग्रथो मे अशोक गुच्छ विशेष उल्लेख योग्य हैं। देवेन्द्रनाथ के घरेलूपन के भाव और स्नेह भक्ति के भाव का सरल प्रकाश लक्षणीय है। सत्येन्द्रनाथ प्रधानतया छन्द शिल्पी थे, उन्होने छन्द मे बहुत नवीनता की सृष्टि की। है। विदेशी कवित को भाव और भाषा समेत बंगला मे आत्मसात् करने मे उनके समान दक्ष और कोई नहीं दिखला सका। इनके श्रेष्ठ काव्यग्रथ "तुलिरलिखन" (१३२१ और "अभ्रआवीर" (१३२२) हैं। १९ वीं शताब्दी के अन्त मे एकाधि स्त्री कवियो का आविर्भाव हुआ। इन मे गिरीन्द्रमोहिनी दासी और श्रीयुत मान कुमारी बसु प्रधान हैं। मान कुमारी मधुसूदन की भतीजी हैं इस युग के मुसलमान लेखकों मे मीर मशर्रफ हुसैन उल्लेख योग्य हैं इनका "विषादसिंधु" प्रथम खड (मुहर्रमपर्व) १२९३ ब० सं० मे प्रकाशि हुआ।

नाट्यकार के रूप में द्विजेन्द्रलाल राय (१८६३-१९१३) की ख्याति खूब थी, कविता और हँसी के गाने लिखने में उन्होंने और भी क्षमता प्रदर्शित की।

प्रबंध-रचना में विशेष कर विज्ञान-संबंधी प्रबन्ध रचना में रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी महाशय (१८६४-१९१९) का जोड़ीदार बंगला साहित्य में आज तक नहीं हुआ। १९ वीं शताब्दी के अन्त में उपन्यास एवं बड़ी कहानियों की रचना-श्रीशचन्द्र मजूमदार ने नवीनता की अवतारणा की। इनकी गद्यशैली जितनी आडम्बर शून्य है उतनी ही हृदयग्राहिणी भी है। बीसवी शताब्दी के आरंभ में उपन्यासक्षेत्र में प्रवेश करनेवाले लेखकों में दो ने असाधारणता दिखलाई, यह दो सज्जन राखालदास बन्द्योपाध्याय (१८८४-१९३०) और शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय हैं। राखालदास के अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। इन उपन्यासों में गुप्त, पाल और मुगलयुग के इतिहास को सजीव बना कर पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यास से जिस वस्तु का बोध होता है उसको बंगला में एकमात्र राखालदास ने ही लिखा है। हरप्रसाद शास्त्री की "वेनेरमेये" (बनिये की बेटी) ठीक न होते हुए भी इस श्रेणी की एक उपादेय रचना है।

छोटी गल्पों के क्षेत्र में बीसवीं शताब्दी में हमको कई प्रधान लेखक मिलते हैं। रवीन्द्रनाथ की छाया में गल्पों की फसल बंगला साहित्य में जैसी हुई है वैसी काव्य, नाटक अथवा उपन्यास किसी भी विषय में नहीं हुई। प्रभात-कुमार मुखोपाध्याय की कहानियाँ आडम्बरशून्य और मधुर होती हैं। रवीन्द्र-नाथ के बाद यही बंगला में श्रेष्ठ गल्प लेखक हैं। सुधीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी छोटी गल्प की रचना में कृतित्व प्रदर्शित किया है। त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय बंगला साहित्य में अद्भुत रस के स्रष्टा हैं। इनके "कंकावती" उपन्यास में आश्चर्यजनक रूपक के राज्य में संभव और असंभव को निपुणता के साथ मिलाया गया है। त्रैलोक्यनाथ की 'मुक्तामाला' और 'डमरुचरित' बंगला साहित्य के नवीन अलिफलैला हैं। थोड़े से आयोजन से निर्मल हास्य की सृष्टि करने में अभी तक त्रैलोक्यनाथ का समकक्ष कोई आविर्भूत नहीं हुआ है।

प्रधान प्रधान प्राचीन बंगला काव्यों की

कालानुक्रमिक सूची

दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक —बौद्धगान औ दोहा।

पन्द्रहवीं शताब्दी—(पूर्वार्द्ध) कृत्तिवास की रामायण।

(उत्तरार्द्ध) बड़चण्डीदास का श्रीकृष्णकीर्तन, मालाधर वसु का श्रीकृष्णविजय, विप्रदास का मनसामंगल, विजयगुप्त का मनसामंगल।

सोलहवीं शताब्दी—(पूर्वार्द्ध) कवीन्द्र का महाभारत' श्रीकरनन्दी का अश्वमेध पर्व, माधव आचार्य का श्रीकृष्ण मंगल, भगवताचार्य की श्रीकृष्ण प्रेमतरंगिणी, वृन्दावनदास का चैतन्यभागवत, लोचनदास का चैतन्यमंगल और दुर्लभसार।

(उत्तरार्द्ध) ईशान नागर का अद्वैतप्रकाश हरिचरणदास का अद्वैतमंगल, कृष्णदास कविराज का चैतन्यचरितामृत, कृष्णदास का श्रीकृष्ण-मंगल. जयानन्द का चैतन्यमंगल वंशीवदन का मनसामंगल, नारायणदेव का मनसामंगल और कालिकापुराण. माणिकदत्त का चंडीमंगल, माधव आचार्य का चंडीमंगल, माधव आचार्य का गंगामंगल श्रीकृष्णकिंकर का श्रीकृष्णविलास, मुकुन्दराम का चंडीमंगल, कविवल्लभ का रस-कदम्ब नित्यानन्द का प्रेमविलास, "दु:खी" श्यामदास का गोविन्दमंगल, कविशेखर का गोपालविजय।

सत्रहवीं शताब्दी — (पूर्वार्द्ध) काशीराम का महाभारत, गुरुचरण दास का प्रेमामृत, यदुनन्दनदास का कर्णानन्द, विदग्धमाधव, दानकेलिकौमुदी, और गोविंद-लीलामृत, गदाधरदास का जगत्मंगल, दौलत-काजी की सती मयनामती, राजवल्लभ का वशी-विलास, गतिगोविन्द की वीररत्नावली।

(उत्तरार्द्ध) गोपीवल्लभदास का रसिकमंगल, अलाओल की पद्मावती, सिकन्दरनामा और हफ्तपैकर इत्यादि, क्षमानन्द का मनसामंगल, अद्भुत आचार्य की रामायण भवानन्द का हरिवंश, परशुराम का श्रीकृष्णमंगल, मनोहर दास की अनुरागवल्ली, मनोहर दास का दिनमणि-चन्द्रोदय कालिदास का मनसामंगल, कमललो-चन का चंडिका विजय, भवानीप्रसाद का दुर्गामंगल, रूपनारायण का दुर्गामंगल, गोविन्द दास का कालिकामंगल, रतिदेव का मृगलुब्ध, कविचन्द्र का शिवायन, कृष्णराम का कालिका-मंगल, षष्ठीमंगल और रायमंगल सैयदसुलतान का ज्ञान प्रदीप, और नबी-वंश इत्यादि, शेखचाँद का रसूलविजय, सीताराम का धर्ममंगल, रूपराम का धर्ममंगल, श्याम पंडित का धर्ममंगल, रामदास आदम का धर्ममंगल।

अठारहवीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) कवि चन्द्र का गोविन्द मंगल, प्रेमदास का चैतन्य चन्द्रोदयकौमुदी और वंशीशिक्षा, नरहरि चक्रवर्ती का भक्तिरत्नाकर और नरोत्तम-विलास, वनमालीदास का जयदेव-चरित्र, राम जीवन का मनसामंगल, और आदित्यचरित,

घनराम का धर्ममंगल, रामेश्वर का शिवायन, जीवनकृष्णमैत्र का ननामंगल, भवानीशंकर की मंगलचंडी पांचालिका, महादेव चक्रवर्ती का अनिल पुराण।

(उत्तरार्द्ध) भारतचन्द्र का कालिका मंगल, मुक्ता-रामसेन का सारदामंगल, रामप्रसाद का कालिका मंगल, राधाकान्त मिश्र का विद्यासुन्दर काव्य, माणिक गांगुली का धर्ममंगल, दुर्गाप्रसाद की गंगा भक्तितरंगिणी, रुद्रराम का षष्ठीमंगल, विजयराम का तीर्थमंगल जयनारायण का काशीखंड विश्वम्भर का जगन्नाथमंगल।

अनुक्रमणिका